हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीजका ३३ वाँ ग्रन्थ ।

भीष्म ।

सुप्रसिद्ध नाटककार
स्वर्गीय बाबू द्विजेन्द्रलाल रायके
बंगला नाटकका हिन्दी अनुवाद ।

अनुवाद-कर्त्ता—
पण्डित रूपनारायण पाण्डेय ।

प्रकाशक,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई ।

चैत्र १९७८ विक्रम ।
अप्रैल १९२१ ।

मूल्य १।) रुपया ।
जिल्दसहित पौने दो रुपया ।

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई ।

मुद्रक—
मंगेशराव नारायण कुळकर्णी,
कर्नाटक प्रेस,
नं० ४३४, ठाकुरद्वार, बम्बई ।

भूमिका।

(मूल-ग्रन्थकर्त्ताकी भूमिकाका अनुवाद।)

यदि यह कहा जाय कि महाभारतमें भीष्मके समान महत् चरित्र और कोई नहीं है, तो जरा भी अत्युक्ति न होगी। उसी देवचरित्रको लेकर नाटक-रचना करना हमारे लिए असम साहसिकताकी बात है; परन्तु क्या किया जाय इस प्रकारके चरित्रको चित्रित करनेके लोभको हम नहीं दबा सके। पाठकगण हमारी इस धृष्टताको क्षमा करें।

हम भीष्मका जीवनवृत्तान्त लिखने नहीं बैठे हैं, और न महाभारतके भीष्म-सम्बन्धी काव्यका ही संकलन कर रहे हैं। इसी लिए हमने इस नाटकका आरंभ भीष्मके जन्मवृत्तान्तसे नहीं किन्तु उनकी प्रतिज्ञासे किया है। और इसी लिए हमने इसके किसी किसी स्थलमें विशुद्ध कल्पनासे भी सहायता ली है।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि नाटकोंमें इस तरहकी कौल्पनिक घटना-ओंकी अवतारणा करना संस्कृत अलंकारशास्त्रकर्त्ताओंके मतसे सर्वथा संगत है और पंडित मात्र इससे परिचित हैं। कालिदासके अभिज्ञान-शाकुन्तलमें ऐसी अनेक घटनायें वर्णित हैं जिनका महाभारतमें उल्लेख भी नहीं है। भवभूतिने भी अपने उत्तररामचरितमें अनेक कल्पनाप्रसूत घटनायें लिखी हैं।

धीवरनन्दिनी सत्यवती कुमारी अवस्थामें ही धर्मभ्रष्ट हो गई थी। उसने ऋषिसे ‘ अनन्तयौवन ’का वर माँग लिया था। परन्तु भीष्मके पतन-संवादको सुनकर वह मुहूर्तमात्रमें ‘ स्थविरा ’ हो गई, इस बातका उल्लेख महाभारतके उपाख्यानमें नहीं है। इस विषयमें भी सन्देह है कि वह उस समय जीवित थी या नहीं। यहाँ पर हमने काव्यके हिसाबसे कल्पनाकी सहायता ली है।

भीष्मके साथ अम्बाकी सम्प्रीति भी नाटकानुसार कल्पित की गई है। हमारा विश्वास है कि इससे उनकी प्रतिज्ञाकी कठोरता और चरित्रमहत्ता बहुत बढ़ गई है।

धीवरराजका चरित्र सर्वथा काल्पनिक है। महाभारतमें इसका केवल उल्लेख भर है।

भीष्मके प्रति शाल्वका विद्वेष भी नाटकके हिसाबसे कल्पित किया गया है।

माधवका चरित्र बिल्कुल काल्पनिक है।

जहाँतक हम जानते हैं और कहीं भी हमने महाभारतके उपाख्यानका उल्लंघन नहीं किया है।

अन्यान्य चरित्रोंके सम्बन्धमें चाहे जो हो, पर इतना हम अवश्य कहेंगे कि हमारी कल्पनाके द्वारा भीष्मका महत् आदर्श चरित्र कहीं भी क्षुण्ण नहीं हुआ है। इति।

—ग्रन्थकार।
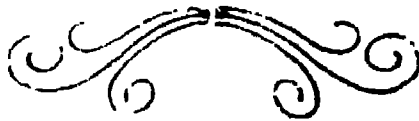
स्वर्गीय द्विजेन्द्रबाबूका नाटक-साहित्य ।

पाठक यह जानकर प्रसन्न होंगे कि हम बंगालके सर्वोच्च नाटक-लेखक और कवि-श्रेष्ठ **स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल रायके** प्रायः समस्त नाटकोंको प्रकाशित कर चुके हैं। नाट्यसहित्यके मर्मज्ञोंका कथन है कि इस देशकी किसी भी जीवित भाषाके लेखकोंमें द्विजेन्द्र बाबूकी जोड़का नाटक-लेखक नहीं हुआ। उनकी प्रतिभा बड़ी ही विलक्षण और विचित्र रसमयी थी। वे बड़े ही उदार और देशभक्त लेखक थे। उनके नाटक दर्शकों और पाठकोंको इस मर्त्य-लोकसे उठा कर स्वर्गीय और पवित्र भावोंके किसी अचिन्त्य प्रदेशमें ले जाते हैं। उनके नाटक पवित्रता, उदारता, देशभक्ति और स्वार्थत्यागके भावोंसे भरे हुए हैं। उन्मादक शृंगार और हाव-भावोंकी उनमें गन्ध भी नहीं। द्विजेन्द्रबाबू हास्यरसके और व्यंग्य कविताके भी सिद्धहस्त लेखक थे। अतएव उनके नाट-कोंमें इसकी भी कमी नहीं। उनके उज्वल और निर्मल हास्यविनोदको पढ़ कर—जिसमें अश्लीलताकी या भण्डताकी एक छींट भी नहीं—आप लोट पोट हो जायँगे। द्विजेन्द्र बाबूके नाटक इस प्रकारके भावों और विचारोंके भण्डार हैं जिनके प्रचारकी इस समय इस देशमें बहुत बड़ी आवश्यकता है।

बंगलाके नाटक-साहित्यमें द्विजेन्द्र बाबूका आसन जगत्प्रसिद्ध कवि रवीन्द्र-नाथ ठाकुरसे भी कई बातोंमें ऊँचा समझा जाता है। स्वयं रवीन्द्र बाबू भी द्विजेन्द्रकी रचनाओं पर मुग्ध हैं। वे बड़े ही निपुण और सूक्ष्मदर्शी समालो-चक हैं। उन्होंने 'मन्द्रकाव्य' की समालोचनामें द्विजेन्द्र बाबूकी मौलिकता और अलौकिक प्रतिभाकी जिस प्रकार अकहट और असंकोच प्रशंसा की है, कहते हैं, कि उनके द्वारा इतनी अधिक ऊँची प्रशंसा बंगसाहित्यमें अब तक और किसी भी कविने प्राप्त नहीं की। सुप्रसिद्ध कवि और समालोचक श्रीयुत देवकुमार राय चौधरी लिखते हैं—

"बंगालमें ऐसा कोई भी कवि नहीं हुआ जो हँसीके गानोंमें, नाट्यसाहि-त्यमें, व्यंग्य कवितामें और जातीय भावोंको जीवित करनेमें, द्विजेन्द्रकी बरा-बरी कर सके। उनकी रचना कवित्वसे कमनीय, मौलिकतासे उज्ज्वल, विशुद्ध रुचिपरायणतासे मनोज्ञ और सद्भावोंसे परिपूर्ण है। वे एक साथ कवि, परिहास-रसिक, दार्शनिक, समालोचक, प्रबन्धलेखक और नाट्यकार थे।"

मार्मिक लेखक श्रीयुत सौरीन्द्रमोहन मुखोपाध्याय लिखते हैं—

"बंगला नाटकोंमें कल्पनाकी ऐसी लीला द्विजेन्द्रलालके पहलेका कोई भी नाट्यकार अपने नाटकोंमें नहीं दिखा सका है। × × × उनके नाटक उच्चभाव, कवित्व और स्वदेशप्रेमके स्निग्ध रश्मिपातसे उज्ज्वल हो रहे हैं।"

' द्विजेन्द्रलाल ' नामक ग्रन्थके लेखक श्रीयुत बाबू नवकृष्ण घोष लिखते हैं—

" द्विजेन्द्रलालके नाटकोंने नाट्यसाहित्यमें उन्नत और विशुद्ध रुचिका स्रोत प्रवाहित करके और नवीन तथा आगामी होनेवाले नाटक-लेखकोंको अनुकरणीय उच्च आदर्श दान करके बंगलाके नाट्यसाहित्यको स्थायी उच्चसाहित्यकी पदवी पर पहुँचानेमें बहुत बड़ी सहायता पहुँचाई है। द्विजेन्द्रके उच्चश्रेणीके नाटकोंका अभिनय करके बंगालके थियेटरोंने शिक्षित समाजमें जो आदर पाया है, वैसा इसके पहले कभी नहीं पाया था। "

इन सब वचनोंसे पाठक जान सकते हैं कि द्विजेन्द्रलाल किस श्रेणीके नाटककार थे।

नाटकोंके अनुवाद बहुत ही सावधानीसे कराये गये हैं। उनका मूलसे मिलान करके संशोधन भी किया गया है। इसके सिवाय प्रायः प्रत्येक नाटकमें एक भूमिका है जिसमें उस नाटकके गुणदोषोंकी विस्तृत आलोचना रहती है। आलोचनायें बड़ी महत्त्वकी हैं और इस विषयके मर्मज्ञ विद्वानों द्वारा लिखी हुई हैं। जो लोक नाटक लिखनेकी कलाका अभ्यास करना चाहते हैं उनके लिए तो बहुत ही उपयोगिनी हैं।

प्रकाशित नाटकोंकी सूची।

दुर्गादास (ऐतिहासिक)। मूल्य १=)
मेवाड़पतन " । मूल्य ॥।=)
शाहजहाँ " । मूल्य ॥।=)
उस पार (सामाजिक)। मू० १=)
ताराबाई (ऐतिहासिक)। मू० १)
नूरजहाँ (ऐतिहासिक)। मू० १=)
भीष्म (पौराणिक)। मू० १।)
चन्द्रगुप्त (ऐतिहासिक)। मू० १)
सीता (पौराणिक)। मू० ॥-)
पाषाणी (")। मू० ॥।)
सूमके घर धूम (प्रहसन)। मू० ।)

राणा प्रतापसिंह और विरह नाटक छप रहे हैं।

प्रकाशक।

नाटकके पात्र ।
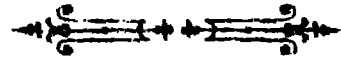
(पुरुष ।)

शिव । श्रीकृष्ण । परशुराम ।

शान्तनु	हस्तिनापुरके राजा ।
भीष्म, चित्रांगद, विचित्रवीर्य	शान्तनुके पुत्र ।
माधव	शान्तनुका सखा (विदूषक)।
शाल्व	सौभ–नरेश ।

महर्षि व्यास, धीवरराज, धीवरराजका मन्त्री, काशीनरेश,
पाँचों पाण्डव, कौरव पक्षके लोग ।

(स्त्री ।)

पार्वती । गंगा ।

सत्यवती	धीवरराजकी कन्या (चित्रांगद और विचित्रवीर्यकी माता) ।
अंबा, अंबिका, अंबालिका	काशीनरेशकी कन्यायें ।
गान्धारी	कौरवोंकी माता ।
कुन्ती	पाण्डवोंकी माता ।
सुनन्दा	अंबाकी सखी ।

भीष्म ।
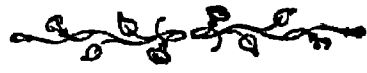
पहला अङ्क ।

पहला दृश्य ।

स्थानः—व्यासजीके आश्रमका उपवन ।

समय—कुछ दिन रहे ।

[व्यासदेव और भीष्म-पितामह टहल रहे हैं ।]

व्यास—धर्मका सूक्ष्मतत्त्व बहुत ही गूढ़ है । शास्त्रमें लिखा है—धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम् ।

भीष्म—उसे मैं खोजूँ कहाँ ?

व्यास—अपने ही हृदयमें ।

भीष्म—उसे पाऊँगा कैसे ?

व्यास—मन एकाग्र करो और कान लगाकर सुनो; तुम्हें अपने हृदयमन्दिरमें वह सुमधुर, ढका हुआ, ध्रुव, गाढ़, गम्भीर सङ्गीत सुन पड़ेगा ।

भीष्म—कहाँ !—कुछ भी तो नहीं सुन पड़ता प्रभु !

व्यास—निश्चय सुन पड़ेगा । देवव्रत ! मैंने तुमको दिव्यज्ञान दिया है । हाँ अबकी बार सुनो—सुनो; उस धर्म-संगीतकी मधुर झनकार हृदय-वीणाके तारोंमें सुन पड़ती है । सुनते हो !

भीष्म—हाँ सुनता हूँ, जैसे दूरपर समुद्रकी लहरोंका अस्पष्ट शब्द सुन पड़ रहा है।

व्यास—उसका मतलब समझते हो ?

भीष्म—जरा भी नहीं।

व्यास—फिर मन लगाकर सुनो।

भीष्म—सुन रहा हूँ।

व्यास—सुनो देवव्रत, वह महा संगीत गूँज रहा है कि "दूसरोंके लिए स्वार्थका त्याग ही सब धर्मोंकी जड़ है।"

भीष्म—त्याग ऋषिवर ?

व्यास—हाँ त्याग। देवताके चरणोंमें हँसते हँसते अपने सुखका बलिदान। यही परम धर्म है। यही सनातन धर्म है। और सब धर्म इसीकी सन्तान हैं।

भीष्म—देवताके चरणोंमें अपने सुखका बलिदान ?

व्यास—हाँ देवताके चरणोंमें अपने सुखका बलिदान—यही महाधर्म है।

भीष्म—और वह देवता कौन है ?

व्यास—मनुष्य।

भीष्म—मनुष्य अपने सुखका बलिदान क्यों करे ?

व्यास—परमसुख—सबसे बड़ा सुख—पानेके लिए।

भीष्म—प्रभू, वह सुख क्या है ?

व्यास—विवेककी जयध्वनि, आत्माका सन्तोष, मनुष्यका आशिर्वाद—यही वह महासुख है। स्वार्थत्यागसे मिलनेवाली परमशान्ति ही वह महासुख है। इसके आगे स्वार्थसिद्धिका साधारण सुख फीका पड़

जाता है । वैसे ही फीका पड़ जाता है, जैसे सूर्यका उदय होने पर चन्द्रमाका बिंब । स्वार्थके बलिदानसे मनुष्यकी जय होती है—सभ्यता आगे बढ़ती है । सभ्यताका सार अंश यही है । इस महान् उद्देश्यके लिए अपने कर्तव्यका पालन करनेमें ही महासुख है देवव्रत ।

भीष्म—समझ रहा हूँ प्रभू ।

व्यास—मनको स्थिरकरके इस मन्त्रका जप करो । धीरे धीरे स्पष्ट—खूब ही स्पष्ट—यह संगीत सुन पड़ेगा । यह वह संगीत है जिसमें सारी पृथ्वीके सब संगीत संमिलित होकर समस्वरसे बज उठते हैं । यह वह सामगान है जो मधुर वंशीके शब्दसे आरंभ होकर प्रबल शृंगनादके रूपमें समाप्त होता है ।—मन्त्रका जप करो ।

भीष्म—जो आज्ञा मुनिवर ।

व्यास—सन्ध्याकाल आगया । आश्रमके भीतर चलो ।

(दोनोंका प्रस्थान)

दूसरा दृश्य ।

स्थान—नर्मदाका एक खेवा-घाट ।

[धीवरराजकी कन्या सत्यवती अकेली टहल रही है]

सत्यवती—सूर्य अस्त हो गये,—परदेसीके हृदय-पटमें बाल्य-स्मृतिके समान, धीरे धीरे सैकड़ों चमकीले नक्षत्र एक एक करके आकाशमें प्रकट होते जा रहे हैं । आज उसी शोभापूर्ण सन्ध्याकालकी याद आरही है,—यमुनाके जलमें मैं अकेली नाव पर बैठी थी । एक श्यामवर्ण लंबे डीलडौलवाले ऋषिने किनारे पर आकर कहा—"सुन्दरी, मुझे उस पार

पहुँचा दो और उसके बदलेमें आशीर्वाद लो।" उनकी लंबी दाढ़ीके सफेद बाल हवासे हिल रहे थे—उनके स्वरसे करुणा और कातरता-का भाव प्रकट हो रहा था। मैंने नाव किनारेसे भिड़ा दी और ऋषि-वरको उस पर चढ़ा लिया। नदीके जलमें नाव बह चली। मैं तन्मय सी होकर नदीके जलमें सन्ध्याकालकी शोभाका प्रतिबिंब देख रही थी—नदीकी लहरोंका मधुर शब्द सुन रही थी। एकाएक शरीर पर हाथ लगनेसे मेरा वह जागतेका स्वप्न उचट गया। उसके बाद एक—

[सखियोंका प्रवेश।]

१ सखी—लो बहन, मत्स्यगन्धा तो यहाँ है!

२ सखी—और अकेली है।

३ सखी—चलो सखी! घर चलो।

४ सखी—घर चलो सखी!

सत्यवती—मैं आती हूँ। तुम चलो।

१ सखी—यह क्या! हम तुमको इस समय यहाँ अकेले छोड़-कर भला जा सकती हैं!

सत्यवती—मैंने कह दिया, तुम चलो। (रूखे स्वरसे) दिक क्यों करती हो!

२ सखी—यह क्यों! क्रोध क्यों करती हो सखी! हमसे क्या कसूर हुआ?

सत्यवती—(नर्म होकर) तुमने कुछ कसूर नहीं किया सखियो। मेरे इस रूखेपनके लिए मुझे क्षमा करो प्यारी सखियो। (हाथ जोड़ती है।)

३ सखी—यह क्या करती हो राजकुमारी?

सत्यव०—सचमुच मैं तुमसे क्षमाकी प्रार्थना करती हूँ।

४ सखी—अच्छा हमने माफ किया । अब घर चलो ।

सत्यव०—तुम मुझे प्यार करती हो ?

१ सखी—(हँसकर) प्यार करती हैं ?—कौन कहता है ?

२ सखी—प्यार करती हैं ? बिलकुल नहीं—जरा भी नहीं ।

३ सखी—तुमको हम सब दुश्मनकी नजरसे देखती हैं ।

४ सखी—हम प्यार करती हैं या नहीं, यह पूछ रही हो ?

सत्यव्रती—मैं सच कहती हूँ, अगर प्यार करती हो, तो अब इस पापिनी धींवर-कन्यासे घृणा—घृणा करो ।

१ सखी—यह तुम क्या कह रही हो ?

सत्यव०—तुम क्या जानती हो कि मैं कौन हूँ ?

३ सखी—जानती हैं—सत्यवती हो ।

सत्य०—और कुछ जानती हो ?

३ सखी—तुम धीवरराजकी कन्या हो और तुम्हारी जवानी सदा बनी रहेगी ।

सत्य०—और कुछ जानती हो ?

४ सखी—बस, और तो कुछ नहीं जानतीं ।

सत्य०—तो फिर तुम कुछ नहीं जानतीं, और न कभी जानोगी ।—जाओ प्यारी सखियो, सब घर चली जाओ, मैं नहीं जाऊँगी

१ सखी—क्यों ?

सत्य०—यह नहीं बताऊँगी ।

२ सखी—क्यों ?

सत्य०—इस 'क्यों' का ठीक उत्तर कभी नहीं पाओगी । जाओ घर लौट जाओ । मैं नहीं जाऊँगी । मेरे घर द्वार कुछ नहीं है ।

२ सखी—ऐं ! तुम रो क्यों रही हो सखी ?

सत्य०—ना ना, तुम जाओ ।

सखी—यह क्या ! तुम्हारी यह क्या हालत है ?

(सत्यवती चुप रहती है ।)

३ सखी—मत्स्यगन्धा, चुप क्यों हो ? क्या सोच रही हो सखी ?

४ सखी—सच तो है, क्या सोच रही हो सखी ?

सत्य०—कुछ नहीं ।

३ सखी—बताती क्यों नहीं हो ?

सत्य०—मैं खुद नहीं जानती, क्या सोच रही हूँ ।

३ सखी—बताओगी नहीं सखी ?

४ सखी—देखती हूँ कि निर्मल सुन्दर सबेरेके समय दूरके श्यामरंग पहाड़ोंकी ओर तुम टकटकी लगाकर उदास दृष्टिसे बहुत देर तक ताका करती हो । एकाएक तुम्हारी दोनों आँखोंसे गर्म आँसुओंकी दो बूँदें, दो जोड़िया बहनोंकी तरह, सहानुभूतिसे निकल पड़ती हैं । मैं अक्सर देखती हूँ कि कभी कभी कुछ कहते कहते तुम रुक जाती हो—जैसे बजते हुए सितारका तार एकाएक टूट जाय। बोलो सखी, तुम्हारा यह कैसा भाव है ? इसका क्या कारण है ?

सत्य०—कुछ नहीं—कुछ नहीं—घर चलो सखियो । कौन था मेरा ? कब ? कहाँ ? कुछ नहीं !

(इसी बीचमें धनुष्य-बाण हाथमें लिये राजा शान्तनु आकर दूरपर खड़े खड़े सब देखते और सुनते हैं । सत्यवती धीरे धीरे सखियोंके साथ जाती है और शान्तनु खड़े रहते हैं ।)

[दो धीवरोंका प्रवेश ।]

१ धीवर—आज कुछ भी हाथ नहीं लगा ।

२ धीवर—हाँ कुछ भी नहीं लगा ।

१ धीवर—चलो, घर लौट चलें ।

२ धीवर—चलो ।

१ धीवर—अच्छा क्योंजी, यह रात है या दिन ?

२ धीवर—रात है ।

१ धीवर—तो फिर अँधेरा क्यों नहीं है ?

२ धीवर—देखते नहीं, चाँद निकला है ।

१ धीवर—ठीक है । लेकिन यह चाँद कैसा भयानक है !—मानो जल रहा है ।

२ धीवर—सच कहते हो !—ओह इसकी ओर तो देखा नहीं जाता !

१ धीवर—अच्छा, बताओ भाई, चाँदसे अधिक उपकार होता है, या सूर्यसे अधिक उपकार होता है ?

२ धीवर—सूर्यसे ।

१ धीवर—अरे दूर हो !

२ धीवर—क्यों ?

१ धीवर—चाँदसे अधिक उपकार होता है ।

२ धीवर—कैसे ?

१ धीवर—अरे देखते नहीं हो भाई, चाँद न होता तो बड़ा बिकट अँधेरा होता । चाँद ही तो अँधेरी रातमें उजियाला करता है ।

२ धीवर—और सूर्य ?

१ धीवर—वह तो दिनको उजियाला करता है । दिनको तो सूर्यकी जरूरत ही नहीं है ।

२ धीवर—तुमने तो खूब सोचा ।

१ धीवर—सोचते सोचते ही तो दुबला हो गया हूँ।

(यह धीवर खूब मोटा ताजा था।)

२ धीवर—सो तो देख ही रहा हूँ।

१ धीवर—अरे अरे—वह कौन है ?

२ धीवर—कहाँ ?

१ धीवर—(शान्तनुकी ओर उँगलीसे दिखाकर) वह—वह !

२ धीवर—आदमी है।

१ धीवर—जीता है ?

२ धीवर—नहीं रे, मर गया है।

१ धीवर—कैसे जाना ?

२ धीवर—बिल्कुल हिलता डुलता नहीं है। जाता आदमी तो हिलता डुलता है।

१ धीवर—और मरा आदमी शायद ताड़के पेड़की तरह सीधा खड़ा रहता है ?

२ धीवर—यह भी सच है। तब तो—गड़बड़झालेमें डाल दिया !

१ धीवर—बहुत बड़े गड़बड़झालेमें। इसका सुलझना सहज नहीं है।

२ धीवर—कैसे सुलझेगा !—अगर यह आदमी जीता है तो फिर हिलता डुलता क्यों नहीं ?

१ धीवर—किसने इसे न हिलने-डुलनेके लिए अपने सिरकी कसम रखाई है !

२ धीवर—और अगर मर ही गया है तो फिर स्वाँगकी तरह यों खड़ा कैसे है ? ऐसा तो कभी देखा नहीं।

१ धीवर—हाँ, याद तो नहीं पड़ता कि कभी ऐसा देखा है।

२ धीवर—यह संदेह दूर कैसे हो ?

१ धीवर—दूर होते तो नहीं देख पड़ता ।

२ धीवर—अच्छा, इसी आदमीसे पूछा जाय तो कैसा ?

१ धीवर—(चिन्तित भावसे) हाँ—यह तो कुछ ठीक जान पड़ता है ।

१ धीवर—तो चलो पूछें ।

(दोनों शान्तनुके पास जाते हैं ।)

१ धीवर—एजी ! एजी !

२ धीवर—ओ भले आदमी !

१ धीवर—बोलता भी नहीं है !

२ धीवर—तो फिर मर ही गया होगा !

१ धीवर— तो यही क्यों नहीं कह देता कि मैं मर गया हूँ । हम निश्चित होकर अपने घर चले जायँ ।

२ धीवर—ना, गड़बड़झाला जैसेका तैसा बना रहा। चलो घर चलें।

(दोनोंका प्रस्थान ।)

शान्तनु—बरसातकी बढ़ी हुई नदी अपने दोनों किनारोंको छापकर वेगसे बही जारही है । शरद ऋतुका पूर्ण चन्द्रमा उदय हो आया है । कोकाबेलीके उज्ज्वल फूल खिल रहे हैं । कोई त्रुटि नहीं है, कोई कमी नहीं है । यह रूपराशि माधुरीके उत्सवकी पूरी तैयारी है । इस रूपके वर्णनकी निष्फल चेष्टामें भाषा चुप रह जाती है ।—यह रूप अपूर्व है । यह स्वर्गकी ज्योति और विश्वका विस्मय है। अभी तक तो मैं तन्मय हो रहा था, कुछ सोचनेकी शक्ति ही न थी । अब धीरे धीरे सोचनेकी शक्ति लौटी आरही है । यह सुन्दरी कौन है ? किसीकी कन्या

है ? इसका घर कहाँ है ?—इधर ही तो शायद गई है ! इसके रहनेकी जगहका पता मुझे कौन बतावेगा !

[माधवका प्रवेश ।]

माधव—आओ मैं बताऊँगा ।—यह क्या ! तनिक और होता तो आही गई थी ।

शान्तनु—क्या ?

माधव—मूर्च्छा और क्या ? मैं बोला, और तुम ऐसे चौंके, जैसे वज्रपात हुआ हो ।

शान्तनु—नहीं नहीं ।—क्या खबर है मित्र ?

माधव—मृग भाग गया ।

शान्तनु—भाग जाने दो । लेकिन—अपूर्व सुन्दरी है !

माधव—कौन ?

शान्तनु—एक जवान औरत । अबतक मैं सन्नाटेमें आकर—

माधव—ओह समझ गया । शिकार करने आकर तुम खुद कामदेवका शिकार बन गये । कामदेवके बाणका निशाना बन चुके ।

शान्तनु—ओह !

माधव—बड़ी बेचेनी है ! बड़ी बेचैनी है ! प्राण निकले जा रहे हैं—अब नहीं बच सकते—इसी तरह न !

शान्तनु—मित्र !—

माधव—लेकिन वह धीवरकी लड़की है ।

शान्तनु—तुमने देखी है ?

माधव—देखी है ।

शान्तनु—फिर एक बार दिखा सकते हो ?

माधव—देखकर क्या करोगे ?

शान्तनु—मैंने उसे अच्छी तरह नहीं देखा मित्र !—और एक बार देखूँगा ।

माधव—समझ गया । आओ, इस राहसे चलो ।

(दोनोंका प्रस्थान।)

तीसरा दृश्य ।

स्थान—धीवरराजके रहनेका घर ।

समय—प्रातःकाल ।

[धीवरराज बड़े ही क्रोधके भावसे टहल रहा है । उसका मन्त्री भी उसके पीछे पीछे है ।]

धीवर०—मैं खफा हूँ—बहुत ही खफा हूँ । रानीका ही दिमाग खराब नहीं है । लेकिन अगर घर भरका—नहीं इतना—नहीं, मैं कल ही राज्य छोड़कर चला जाऊँगा ।

मन्त्री—जी हुजूर--

धीवर०—मैं ' जी हुजूर ' नहीं चाहता, काम चाहता हूँ । काम अगर नहीं कर सकते तो चले जाओ ।

मन्त्री—जी—काम करूँगा नहीं तो क्या ।

धीवर०—' तो क्या '—सबके मुँहसे यही एक बात सुन पड़ती है—' तो क्या ' । मुझे नहीं जान पड़ता, ' तो क्या ' में ऐसा क्या विशेष गुण है । मैं—नहीं, मैं अपनी जान दे दूँगा ।

[धीवरराजकी रानीका प्रवेश ।]

धी० रानी—दोगे तो दे दो ।—ये जान दे देंगे ! जान दे देना ऐसी ही सहज बात है न !—जान दे देंगे !—रोज ही तो जान दे देनेकी धमकी देते हो । लेकिन जान देते एक दिन भी न देखा । जान दे देंगे।

दे न दो। दे दो।—मेरे सामने जान दो। आज ही जान दे दो। अभी। दे दो।—चुप क्यों हो गये? जान दे दो।

धीवर०—तो दे दूँ?

धी० रानी—दे दो।

धीवर०—तो फिर मन्त्री! जान दे दूँ? दे दूँ?

मन्त्री—जी नहीं, ऐसा कोई करता है!

धीवर०—कोई ऐसा करता?—सुना रानी! मन्त्री मना कर रहा है। नहीं तो मैं आज निश्चय जान दे देता।

धी० रानी—क्यों! (मन्त्रीसे) तुम क्यों मना करते हो? तुम मना करनेवाले कौन? मैं रानी हूँ—मैं हुक्म देती हूँ। मेरे हुक्मको दुलखते हो!—जाओ, मैं तुमको तुम्हारे कामसे बरतरफ करती हूँ।

धीवर०—कैसे!—मन्त्री न होगा तो राज्यका काम किस तरह चलेगा?

धी० रानी—राज्य ही तो तुम्हारा बड़ा भारी है न! धीवरोंके चौधरी हो। बस, इतनेहीसे राजा हो गये! राज्य—एक गाँव और नदीका आधा हिस्सा, यही तो राज्य है न? नदी या तालाबमें जाल डालकर मछली पकड़ना—बस यही तो राजकाज है? लगे डरवाने कि "राज्यका काम किस तरह चलेगा?" राज्यका काम मैं चलाऊँगी। तुम जान दे दो।

धीवर०—तुम्हारे कहनेसे दे दूँ?—रानी, भीतर जाओ!

धी० रानी—ओ जलमुँहे! ओ अभागे! इस मंत्रीके सामने अपना रौब दिखा रहा था—जान देनेको धमका रहा था!—मैं रानी हूँ, मेरी बातको दुलखता है! ओरे धूर्त निगोड़े—

धीवर०—छी छी छी! बेहूदा—बिलकुल बेहूदा—रानी!

धी० रानी—निकल—निकल घरसे। नहीं तो—

धीवर०—नहीं तो—क्या करोगी?

धी० रानी—नहीं तो झाड़ू मारकर निकालूँगी।

धीवर०—झाड़ू मारकर निकालोगी?

धी० रानी—झाड़ू मारकर निकालूँगी।

धीवर०—क्या, झाड़ू मारकर निकालोगी?

धी० रानी—हाँ हाँ, झाड़ू मारकर निकालूँगी।

धीवर०—भला किसीने सुना है कि किसी देशकी रानीने कभी उस देशके राजाको झाड़ू मारकर निकाला है!—मन्त्री, तुमने सुना है?

मन्त्री—जी नहीं।

धी० रानी—अच्छा तो अब देख ले।　　　　(प्रस्थान।)

मन्त्री—राजासाहब, खिसक जाइए। अभी समय है, पहलेहीसे खिसक जाइए। रानी बहुत खफा हैं!

धीवर०—क्या! मैं राजा हूँ। राजा होकर एक औरतके डरसे खिसक जाऊँगा—भाग जाऊँगा? कभी नहीं। अरे कोई है? मेरी कमान और तीर तो ले आ। और—

मन्त्री—कुछ न कर सकिएगा—कहता हूँ खिसक जाइए। कुछ न कर सकिएगा।

धीवर०—ऐसी बात है?

मन्त्री—कह तो रहा हूँ, बस खिसक जाइए।

धीवर०—अच्छा, तुम कह रहे हो। तुम मेरे मन्त्री हो, तुम्हारा कहा न टालूँगा। (जाना चाहता है।)

[शान्तनु और माधवका प्रवेश ।]

माधव—यही शायद धीवरराज है!—महाशय आप ही क्या यहाँके राजा हैं ?

धीवर०—नहीं तो क्या तुम राजा हो ? देखो—तुम लोग खबर दिये बिना—इस तरह मेरे पास आकर खड़े हो गये! और फिर एकदम आकर पूछने लगे 'महाशय, आप ही क्या यहाँके राजा हैं ?' यह तुम्हारा कैसा बर्ताव है? जानते हो, मेरे पास जो लोग आते हैं, वे क्या करते हैं ?

माधव—जी नहीं, सो तो नहीं जानता।

धीवर०—वे लोग पहले इस मन्त्रीके फुफेरे सालेको भेट भेजते हैं।

माधव—जी, फुफेरे सालेको!—

धीवर०—हाँ! फुफेर सालेको। उसके बाद मन्त्रीके मौसेरे भाईके ससुरके सामने हाथ जोड़कर खड़े होते हैं।

माधव—बापरे! इतना अदब कायदा है!

धीवर०—मैं राजा हूँ।—क्यों मन्त्री ?

मन्त्री—जी राजासाहब।

माधव—इस बातको कौन नहीं मानता!

धीवर—मानते हो ?

माधव—खैर मान लिया।

धीवर०—इस 'खैर' के क्या माने ?—मन्त्री!

मन्त्री—जी—इस 'खैर' का मतलब तो मैं भी अच्छी तरह नहीं समझा।

धीवर०—यहाँ 'खैर–फैर' कहनेसे काम नहीं चलेगा। मैं राजा हूँ। अब कहो, क्या कहना चाहते हो ?

माधव—अब मैं यह कहना चाहता हूँ कि—मेरे प्यारे मित्र—यह ये अर्थात् इनके मदनने बाण मारे हैं । इसीसे ये तड़प रहे हैं ।

धीवर०—मदन कौन ? मन्त्री ! यह मदन—कौन है ? उसने इस बेचारे भले आदमीके बाण क्यों मारे ? उसे पकड़कर ले आओ—मैं इस मामलेका विचार करूँगा । बाण क्यों मारे ?

माधव—सुनता हूँ—आपके एक लड़की है । यह बात क्या सच है ?

धीवर०—हाँ लड़की तो है ।

माधव—मेरे इन प्यारे मित्रने उसे देखा है । यही इनका अपराध है ! इसी अपराधके कारण मदनने इनके बाण मारे हैं । राजा साहब ! आप इस मामलेका विचार कीजिए ।

धीवर०—जरूर करूँगा । मेरी लड़कीको इन्होंने देखा है, तो मैं इनके बाण मारूँगा । मदन क्यों मारेगा !—मन्त्री !

मन्त्री—ठीक तो है राजासाहब ।

धीवर०—मदन क्या इसी तरह बाण मारता फिरता है ?

माधव—जी राजासाहब, उसका धंधा ही यही है !

धीवर०—धंधा कैसा ?

माधव—यही, अगर किसीका चेहरा सुन्दर हो, गठन कुछ निराली हो और व्याकरणके हिसाबसे अगर वह स्त्रीलिंग हो, तो ये लोग—अर्थात् इन लोगोंकी भूख-प्यास हर जाती है, रातको इन्हें नींद नहीं आती, दिन-रात इनके ऊपर पंखेकी हवा करनी पड़ती है, कलेजा मुँहको आने लगता है, इनकी हर घड़ी 'हाय हाय' करते बीतती है !

धीवर०—क्यों ?

माधव—मदन बाण मारता है ।

धीवर०—वही तो ! मन्त्री ! इस बारेमें तुम क्या सलाह देते हो ?

मन्त्री—जी, आप जो मुनासिब समझें ।

माधव—आपके मन्त्री तो बड़े चतुर देख पड़ते हैं। मुझे तो नहीं मालूम कि ऐसा मुलायम और सहज मन्त्री और किसी राजाको नसीब हुआ हो। सलाह देनेमें तो साक्षात् बृहस्पति ही हैं !

धीवर०—खूब बूढ़ा आदमी है न !

माधव—इसीसे इतनी बुद्धि है ।

धीवर०—मन्त्री, इस मदनको पकड़ लाओ। मैं विचार करूँगा!

माधव—अजी मदनको कोई पकड़ नहीं सकता । यही तो कठिनाई है ।

धीवर०—कोई पकड़ नहीं सकता ?

माधव—नहीं !

धीवर०—तो फिर उपाय क्या है ?

माधव—आप अगर इनके साथ अपनी लड़कीका ब्याह कर देनेके लिए राजी हों तो अबकी बार ये मदनके हाथसे छुटकारा पा सकते हैं।

धीवर०—ब्याह !

माधव—ब्याहकी जरूरत तो नहीं थी; लेकिन इनका यह न जाने कैसा कुसंस्कार है। इस जगह पर इनमें जरा कविताकी कमी है। आप ब्याह कर देनेके लिए राजी हैं ?

धीवर०—मन्त्री !

मन्त्री—आपके मित्रके साथ हमारे राजासाहबको अपनी लड़कीका ब्याह कर देना होगा ?

माधव—बस बस आपने ठीक समझ लिया।

मन्त्री—अब सवाल यह है कि आपके मित्र हैं कौन ?

(धीवरराज सिर हिलाता हुआ मन-ही-मन मन्त्रीकी बुद्धिको सराहता है।)

माधव—इस सवालको मैं अभी हल किये देता हूँ । मेरे मित्र हैं हस्तिनापुरके राजा ।

मन्त्री—(आश्चर्यसे) हस्तिनापुरके राजा !

माधव—जी हाँ ।

मन्त्री—हस्तिनापुरके महाराज !

माधव—हाँ साहब, हाँ ।

मन्त्री—महाराज शान्तनु ?

माधव—बिल्कुल ठीक ।

मन्त्री—(धीवरराजसे) सिंहासनसे उठ बैठिए—सिंहासनसे उठ बैठिए ।

धीवर०—क्यों ? क्यों ? सिंहासनसे क्यों उठूँ ?

मन्त्री—पहले उठ बैठिए, फिर कुछ कहिएगा । नहीं तो—

धीवर०—नहीं तो क्या ?

मन्त्री—नहीं तो बस राज्य गया समझिए ।

धीवर०—ऐं ! ऐं–सचमुच, नहीं तो राज्य गया ? (कुछ उठकर) नहीं तो राज्य गया ?

मन्त्री—उठिए !

(धीवरराज सिंहासनसे उठकर खड़ा हो जाता है ।)

मन्त्री—महाराज हस्तिनापुरनरेश ! हमारा जन्म आज सफल हुआ । आप इस सिंहासनको ग्रहण कीजिए ।

धीवर०—(आश्चर्यसे) सिंहासनको ग्रहण कीजिए ? यह क्या !

शान्तनु—इसकी जरूरत नहीं है। धीवरराज, आप सिंहासन पर बैठिए।

धीवर०—(घबराये हुए भावसे) मन्त्री !—

मन्त्री—बैठिए, महाराज खुद आज्ञा दे रहे हैं—बैठ जाइए।

(धीवरराज बैठ जाता है।)

माधव—अब हमारी प्रार्थना ?

धीवर०—मन्त्री !

(मन्त्री धीवरराजके कानमें कुछ कहता है।)

धीवर०—जरूर—! महाराज, मैं अभी आता हूँ।

(मन्त्री और धीवरराजका प्रस्थान।)

माधव—जान पड़ता है, धीवरराज अपनी स्त्रीसे सलाह करने गया है। महाराज, इस गँवार उजड्डको देखकर भी क्या इसकी कन्याके साथ ब्याह करनेको आपका जी चाहता है ?

शान्तनु—लेकिन हम लोगोंको यह पता लगा है कि वह सुन्दरी इस धीवरकी कन्या नहीं है।

माधव—इसकी पाली हुई कन्या तो है ! इस असभ्यसे उसने शिक्षा तो पाई है !

शान्तनु—सुना है, वह किसी ऋषिके वरदानसे अनन्तयौवना है। उसकी जवानी सदा बनी रहेगी। वह समझदार और बुद्धिमती भी है।

माधव—हाँ, यह ठीक है। पर मुझे देख पड़ता है, ऋषिके इस वरदानका कुछ गुप्त रहस्य भी है। इस प्रकारकी अज्ञातकुलशीलाके साथ ब्याह करना युक्तिसंगत नहीं हो सकता महाराज।

शान्तनु—मित्र, मुझे यह सब सोचनेका अवकाश नहीं है। मैं उसे चाहता हूँ।

[धीवरराज और उसके मन्त्रीका फिर प्रवेश ।]

माधव—रानीने क्या निश्चय किया ?

धीवर०—रानीने क्यों ?

मन्त्री—महाराजके कोई पुत्र मौजूद है ?

माधव—बेशक ।

मन्त्री—वही तो !

माधव—' वही तो ' क्या ?

मन्त्री—राजासाहब ! वही तो !

धीवर०—वही तो !

माधव—राजासाहब, यह ब्याह कर देना क्या आपको मंजूर है ?

धीवर०—वही तो ।

माधव—तो नामंजूर है ?

धीवर०—वही तो !—क्यों मन्त्री ?

मन्त्री—वही तो ।

धीवर०—वही तो ।

माधव—मंजूर है या नामंजूर ?

मन्त्री—वही तो ।

धीवर०—वही तो ।

माधव—एक जवाब दीजिए ।

धीवर०—वही तो ।

माधव—यही क्या तुम्हारा आखरी जवाब है ?—बस ' वही तो ' ?

धीवर०—मन्त्री ।

(मन्त्री धीवरराजके कानमें कुछ कहता है ।)

धीवर०—सुनो ! मेरी यह जिद है कि प्राण रहें चाहे जायँ, मेरी लड़कीका लड़का ही बादको राजा हो । इस शर्त पर क्या महाराजको

ब्याह करना मंजूर है ?—सीधीसी बात है।—मन्त्री, कहो—समझा-कर कहो।

मन्त्री—महाराज! हमारे राजासाहबकी यह प्रतिज्ञा है कि महा-राजके बाद इस कन्याके पेटसे पैदा हुआ लड़का ही हस्तिनापुरकी गद्दीका राजा हो। इस पर क्या आप राजी हैं ?

शान्तनु—नहीं—सो—कैसे होगा? हमारा बड़ा लड़का मौजूद है।

मन्त्री—तो फिर महाराज शान्तनु, यह ब्याह नहीं हो सकेगा।

शान्तनु—यही क्या तुम्हारे राजाका स्थिर संकल्प है ?

धीवर०—हाँ—यही—मेरा क्यों मन्त्री—स्थिर संक—अभी क्या कहा था ?

माधव—संकल्प। चलिए महाराज। क्या!—आप क्या सोच रहे हैं ?

शान्तनु—धीवरराज! आपकी मर्जीके खिलाफ मैं आपकी कन्यासे ब्याह करना नहीं चाहता। कुआँरी कन्या पर पिताका अधिकार होता है। धीवरराज, तो फिर जाता हूँ।—आओ मित्र।

(शान्तनु और माधवका प्रस्थान।)

धीवर०—मन्त्री!

मन्त्री—जी।

धीवर०—मुझे भीतर ले चलकर बिछौने पर लिटा दो। लेट रहूँ। नहीं तो—नहीं तो—

मन्त्री—नहीं तो ?

धीवर०—नहीं तो शायद यहीं आँखें बन्द हो जायँगी, दन्त-कपाट लग जायँगे।

(मन्त्री लेकर जाता है।)

चौथा दृश्य ।

स्थान—हस्तिनापुरके एक महलका हिस्सा ।

समय—प्रातःकाल ।

[भीष्म अकेले एक खंभेसे पीठ लगाये खड़े हैं ।]

भीष्म—पराये हितके लिए अपने स्वार्थका त्याग ही सब धर्मोंकी जड़ है । व्यासदेवका बताया वही मधुर संगीत निरन्तर अन्तःकरणमें ध्वनित हुआ करता है । वह धीरे धीरे हृदयमें शक्तिको जमा करता हुआ, नदीका कलनाद जैसे बहियाके गंभीर शब्दका रूप धारण करता हुआ सुन पड़े, वैसे सुन पड़ रहा है ।

[आप ही आप बकते बकते माधवका प्रवेश ।]

माधव—इसीको कहते हैं—"घरका खाकरके बनके ढोर चराना।" अरे, वह सुन्दरी है तो तुम्हारा क्या ?—

भीष्म—चाचा, आप आप-ही-आप क्या बक रहे हैं ।

माधव—(जैसे सुना ही नहीं) उसके लिए न तुम खाते हो—न पीते हो; न आँखोंमें नींद है—न और कोई चिन्ता है; दिन दिन गिरगिरटके समान दुबले होते चले जा रहे हो—इस लिए कि वह सुन्दरी है । अरे भाई, वह सुन्दरी है तो इसमें तुम्हारा क्या ?

भीष्म—कौन सुन्दरी है ?

माधव—(उसी भावसे) उसी दिनसे मुरझाये जा रहे हैं ।

भीष्म—कौन ?

माधव—और कौन ? तुम्हारे बाप ।—ए लो ! कह ही दिया ।

भीष्म—हाँ चाचाजी, पिताजीको क्या हो गया है ?

माधव—कहीं दूँ । और कबतक दबा रक्खूँगा ! आग कबतक दबी रह सकती है ! राज्यमें अशान्ति है, घरमें अशान्ति है और

जाड़ेके दिनोंमें खुली छतपर लेटने, चन्द्रमाकी तरफ देखने और लंबी लंबी साँसे लेनेसे हो गया है राजाको यक्ष्माकाश (तपेदिक)। क्यों ? इस लिए कि—उसका चेहरा अच्छा है—वह सुन्दरी है—और—और कहनेसे मतलब क्या !

भीष्म—(आग्रहके भावसे) चाचा, कहिए तो, पिताजीकी यह दशा क्यों हुई है ? आप जानते हैं ?

माधव—अरे—जानता क्यों नहीं, सब जानता हूँ ।

भीष्म—तो बताइए न। मैं उनसे इसका कारण पूछता हूँ, तो वे कुछ उत्तर ही नहीं देते हैं ।

माधव—यही तो बात है। इधर तो हस्तिनापुरके राजा—भारतके सम्राट् हैं, लेकिन उधर बेचारे बहुत ही सीधे और आवश्यकतासे अधिक शरमीले हैं ।

भीष्म—क्या हुआ है, बताइए न ? पिताजी धीरे धीरे पीले दुबले और उदास क्यों होते जाते हैं ?

माधव—इसका कारण बस वही सुन्दरी है ।

भीष्म—कौन सुन्दरी ?

माधव—कौन क्या ? एक धीवरकी लड़की है । हाँ सुन्दरी जरूर है—लेकिन उसके शरीरसे मछलीकी गन्ध निकलती है। उसीसे ब्याह करनेके लिए राजा पागल हो रहे हैं—वज्रमूर्ख हैं ।

भीष्म—तो फिर पिताजी उससे ब्याह क्यों नहीं कर लेते ?

माधव—यह भी उनका एक भलमंसीका कुसंस्कार है। क्षत्रिय राजाधिराज हो—इच्छा हुई है—तरवार खींच लो–इच्छा पूरी कर लो। सो न करके उलटे कन्याके पिताके पैरों पड़ना भर बाकी रहने दिया। मैं साथ न होता तो शायद वह भी बाकी न रहता–पैरों भी पड़जाते ।

भीष्म—लड़कीका बाप कौन है ?

माधव—और कौन होगा ?—एक धीवरोंका चौधरी है ! धीवरराज है ! मालूम नहीं यह ' राजा ' की पदवी उसे किसने दी है ।

भीष्म—तो लड़कीका बाप क्या पिताजीके साथ अपनी लड़की-का ब्याह करनेको राजी नहीं है ?

माधव—देखनेसे तो नहीं ही जान पड़ा !—उसने कहा कि उस लड़कीके जो लड़का होगा वही राजगद्दी पावेगा, यह प्रतिज्ञा अगर महाराज कर सकें तो वह उनके साथ अपनी लड़कीका ब्याह कर सकता है ।

भीष्म—पिताजी इस पर राजी नहीं हुए ?

माधव—राजी कैसे होंगे ? अपने सुयोग्य बड़े लड़केको, अर्थात् तुमको, राजा न बना कर—राजा बनावेंगे एक धीवरकन्याके लड़केको —जिसके शरीरसे मछलीकी गन्ध आती है ! जाऊँ वैद्यको ले आऊँ । जान पड़ता है, महाराज बहुत दिन जियेंगे नहीं । मुझे तो यही—

(प्रस्थान ।)

भीष्म—इतना ही !—हाय पिताजी, तुम मेरे लिए दुःख उठा रहे हो ! मेरे लिए रोगी, दीन, मलिन और कातर हो रहे हो ! पिताजी, तुम नहीं जानते, मैं तुम्हारे एक इशारेसे असाध्य साधन कर सकता हूँ ! मेरे प्यारे पिता, तुमने अपने मुँहसे यह बात मुझसे क्यों नहीं कही ! इस अधम पुत्रके ऊपर तुम्हें इतना स्नेह—इतना स्नेह है !—मैं भी दिखा दूँगा पिताजी कि मैं इस अथाह स्नेहके अयोग्य नहीं हूँ ।—इतना दुःख मेरे लिए !—मैं तुम्हारे सुखके चरणोंमें अपने प्राणोंका बलिदान कर सकता हूँ　　　　(प्रस्थान ।)

[आकाशमें महादेव और पार्वतीका प्रवेश ।]

महादेव—आज मनुष्यजातिके इतिहासमें एक नये अध्यायका आरंभ हुआ । पार्वती, देखो, यह जो लंबे-चौड़े डीलका, गोरे रंगका, सुन्दर युवक चिन्तामें डूबा हुआ खड़ा है, वह संसारको एक नया गंभीर संगीत सुनावेगा ! वह संगीत, जिसे आजतक कभी किसीने नहीं सुना ।

पार्वती—कौनसा संगीत प्राणनाथ !

महादेव—स्वार्थत्यागका संगीत—यह त्याग सूखी तपस्या, शास्त्रके विचार या धर्मके प्रचारमें ही सीमाबद्ध नहीं है । यह त्याग कर्मके मार्गमेंसे होकर जगत्‌के हितके लिए फैला हुआ है ! प्रिये, यह युवक त्यागके मन्त्रको वेदवाक्य द्वारा नहीं, जीवन भरके अनुष्ठानके द्वारा जगत्‌को सुनावेगा !

पार्वती—यह युवक ? इसका नाम ?

महादेव—देवव्रत ।

पार्वती—इसका पिता कौन है ?

महादेव—राजाधिराज शान्तनु ।

पार्वती—इसकी माता कौन है ?

महादेव—तुम्हारी सौत गंगा ।

पाँचवाँ दृश्य ।

स्थान—धीवरराजका घर ।

समय—प्रातःकाल ।

[धीवरराज, मन्त्री और भीष्म खड़े हैं ।]

धीवर०—ये हस्तिनापुरके राजाके लड़के हैं ?

मन्त्री—हाँ, यही हस्तिनापुरके युवराज हैं ।

धीवर०—(भीष्मसे) तुम्हारा नाम क्या है ?

भीष्म—देवव्रत ।

धीवर०—अच्छा नाम है । सो यहाँ भैया, किस लिए आये हो ?

भीष्म—आत्म-बलिदान देने ।

धीवर०—क्या देने ?

भीष्म—आत्मबलिदान ।

धीवर०—यह कौनसी चीज है ?—मन्त्री !

मन्त्री—युवराजजी, आप अपनी प्रार्थना सीधी साधी भाषामें कहिए । आप क्या चाहते हैं ?

भीष्म—धीवरराजकी कन्याको ।

धीवर०—मगर तुम तो अभी कहते थे कि न-जाने क्या देने आये हो ?

(मन्त्री धीवरराजके कानमें कुछ कहता है ।)

धीवर०—तो ये सहज भाषामें क्यों नहीं कहते ? तुम्हारा अब तक ब्याह नहीं हुआ ?

भीष्म—मैं अविवाहित हूँ ।

मन्त्री—अर्थात् आपका ब्याह नहीं हुआ । यही तो ?

भीष्म—हाँ ।

धीवर०—मन्त्री ! (अलग जाकर मन्त्रीसे सलाह करके) तो तुम्हारे साथ ब्याह कर देनेसे इस सत्यवतीका लड़का ही तो राजा होगा न ?

भीष्म—आप गलती कर रहे हैं धीवरराज ! मैं आपकी कन्यासे खुद ब्याह करनेके विचारसे यहाँ नहीं आया । मैं उन्हें मातृपदके लिए वरण करने आया हूँ ।

धीवर०—अब और यह क्या कहा !—मन्त्री ! तुम इनके साथ बातचीत करो। मैं इनकी बातको बिल्कुल नहीं समझ पाता।

मन्त्री—युवराज, अनुग्रह करके सीधी भाषामें जो कुछ कहना हो सो कहिए।—"मातृपदके लिए वरण करने आया हूँ" इसके क्या माने ?

भीष्म—मैं धीवरराजकी कन्याको अपनी माता बनानेके लिए माँगने आया हूँ।

धीवर०—यह आदमी पागल जान पड़ता है।—मन्त्री !

मन्त्री—लेकिन युवराज, महाराज शान्तनुके साथ सत्यवतीके ब्याह-की निष्फल बातचीत तो एक बार हो चुकी है।

भीष्म—मन्त्रीजी, सो मैं जानता हूँ।

मन्त्री—फिर ?

भीष्म—मैं उस व्यर्थ प्रार्थनाको लेकर फिर आया हूँ। पिताजी इस कन्याके होनेवाले पुत्रको राज्य देना अस्वीकार कर गये थे, क्यों न ?

मन्त्री—जी हाँ, आप ठीक कह रहे हैं।

भीष्म—उन्होंने मेरे ही लिए यह बात नहीं स्वीकार की थी। मैं महाराजका अकेला लड़का हूँ।

मन्त्री—सो सुन चुका हूँ युवराज।

भीष्म—अब मैं उस प्रस्तावको स्वीकार करता हूँ।

मन्त्री—मगर महाराज शान्तनुने नामंजूर कर दिया है।

भीष्म—उससे क्या बनता-बिगड़ता है ? राज्य पर दावा मेरा है। मैं उस दावेको छोड़े देता हूँ।

मन्त्री—(विस्मयके भावसे) आप राज्य परसे अपना दावा छोड़े देते हैं?

भीष्म—हाँ, छोड़े देता हूँ।

मन्त्री—अपनी इच्छासे ?

भीष्म—हाँ, अपनी इच्छासे ।

धीवर०—पागल है पागल !

मन्त्री—आश्चर्य है ।

भीष्म—जगत्में कुछ भी आश्चर्य नहीं है मन्त्रीजी ! जो जिस कामको कर नहीं सकता, उसे वह आश्चर्य समझता है । एकके लिए जो कठिन या असाध्य है, वही दूसरेके लिए सहज है । इसके सिवा किसीके लिए आज जो कठिन है वही कल सहज हो सकता है । इसीसे कहता हूँ, जगत्में आश्चर्य कुछ नहीं हैं ?

मन्त्री—आप, अपने राज्यके दावेको छोड़ देते हैं ?

भीष्म—हाँ छोड़े देता हूँ ।

मन्त्री—अच्छी तरह सोचकर देख लिया है युवराज ? मुट्ठीमें आया हुआ एक राज्य—जिस राज्यके लिए सभ्य जातियाँ लड़ मरती हैं, आदमी आदमीका खून करता है, भाई भाईकी हत्या करनेको तैयार हो जाता है, बेटा भी बापका दुश्मन बन जाता है—उसी राज्यका दावा आप छोड़े देते हैं?—एक बार फिर सोचकर देखिए ।

भीष्म—उसे मैं मुट्ठीभर धूलकी तरह छोड़े देता हूँ ।

मन्त्री—किस लिए ?

भीष्म—पिताकी प्रसन्नताके लिए ।

मन्त्री—इसी समय ?

भीष्म—इसी समय ।

धीवर०—युवक ! तुम्हारा सिर फिर गया है ।

भीष्म—नहीं धीवरराज ! मेरा सिर नहीं फिरा । मेरी परीक्षा करा लो । आज मुझसे बढ़कर सुस्थ, स्थिरसंकल्प (अपने इरादे पर दृढ़),

और व्यवस्थितचित (होशहवासमें) और कोई आदमी इस संसारमें नहीं है ।

धीवर०—तुम सचमुच राज्य छोड़े देते हो ?

भीष्म—सचमुच छोड़े देता हूँ ।

धीवर०—कसम खाते हो ?

भीष्म—कसम खाता हूँ ।

(धीवरराज फिर मन्त्रीसे सलाह करता है ।)

धीवर०—अच्छी बात है ! तो मुझे अब इस ब्याहमें कुछ उज्र नहीं है ।

[धीवरकी रानीका प्रवेश ।]

धीवर रानी—उज्र है ।

धीवर—वह क्या रानी !

धी० रानी—चुप रहो । मैं रानी हूँ । मैं कहती हूँ कि अभीतक मुझे उज्र है ।

भीष्म—क्या ?

धी० रानी—तुम राज्य पर दावा नहीं कर सकते यह सच है; लेकिन बादको अगर तुम्हारे लड़के-बाले राज्य पर दावा करें ?

धीवर रानी—यह भी ठीक है ।

भीष्म—हाँ वे कर सकते हैं । लेकिन उसके लिए मैं क्या कर सकता हूँ ?

धी०रानी—तुम कर सकते हो । तुम अगर अपना ब्याह न करो तो वह खटका मिट सकता है ।—क्यों मन्त्रीजी ?

मन्त्री—आपने ठीक कहा रानी साहब । ब्याह ही न करेंगे तो लड़के-बाले कहाँसे होंगे ।

भीष्म—ब्याहका विचार भी छोड़ना होगा ?

मन्त्री—इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है ।

भीष्म—(अर्द्ध स्वगत) मेरी इतने दिनोंकी संचय की हुई चाह, मेरी एकान्तमें बढ़ाई गई आशा—वह भी त्याग करनी होगी ! यह तो बहुत ही कठोर त्याग है ! और उसके ऊपर पिण्ड-तर्पणसे हीन होकर अनन्तकालतक पुंनाम नरकमें निवास करना होगा ! यह काम तो बड़ा ही कठोर है ! बड़ा ही कठोर है !

मन्त्री—तो युवराज, आप इस बात पर राजी नहीं हैं ?

भीष्म—बड़ा ही कठोर है !—परन्तु क्या फिर मेरे त्यागका महाव्रत इस पहली परीक्षाके ही धक्केसे चूर हो जायगा ? मैं क्या मनुष्य नहीं हूँ ?

धीवर०—तो तुम नामंजूर करते हो ?

भीष्म—(घुटने टेककर और ऊपरकी ओर हाथ जोड़कर) स्वर्गके देवगण! इस हृदयमें बल दो । मैं तुच्छ मनुष्य हूँ—मैं विषयोंमें आसक्त और दुर्बल हूँ । मैं शक्तिहीन और असहाय हूँ । देवगण, बल दो ! इस हृदयकी वासनाको निर्दय निष्ठुर भावसे चूर चूर कर दो—पीस डालो । सारे अहंकारको दूर कर दो । सब स्वार्थको भस्म कर दो । मर्मस्थलको गहरे अन्धकारसे ढक दो—उसमें प्रकाशकी रेखा भी न रहने पावे । देवगण ! शक्ति दो ।

धी० रानी—पागल है ! पागल !

मन्त्री—युवराज, क्या निश्चय किया ?

भीष्म—(उठकर) धीवरराज, मेरी इस दमभरकी दुर्बलताको क्षमा करो !—मन्त्री ! निश्चय कर लिया । ब्याहका इरादा भी मैंने छोड़ दिया ।

धी० रानी—कभी ब्याह नहीं करोगे ?

भीष्म—कभी ब्याह नहीं करूँगा ।

मन्त्री—यही निश्चय है ?

भीष्म—यही निश्चय है। मैंने अपने कर्त्तव्यके चरणोंमें यह लोक और परलोक, दोनों अर्पण कर दिये । आजसे देवव्रत सच्चा संन्यासी है । वासनाकी केंचली उसने छोड़ दी । सन्देहकी काली घटा उड़ गई । आँधी थम गई । ऊपर केवल स्थिर नील आकाश है और नीचे उसके चरणोंमें सागर गंभीर शब्दसे गरज रहा है ।

धी० रानी०—तो कसम खाते हो ?

भीष्म—मेरी इस प्रतिज्ञाके साक्षी सब देवता हैं !

धी० रानी—मैंने कहा था मन्त्री—यह युवक पागल है !

भीष्म—ना, मैं पागल नहीं हूँ। मैंने पिताको प्रसन्न करके सारे देवोंको सन्तुष्ट किया है ।—

पिता धर्मः पिता स्वर्गः पिता हि परमन्तपः ।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः ॥

छठा दृश्य ।

स्थान—हस्तिनापुरके राजमहलका एक हिस्सा ।

समय—सन्ध्याकाल ।

[महाराज शान्तनु और उनका सखा माधव ।]

शान्तनु—मेरे लिए देवव्रतने संन्यास ले लिया ?

माधव—देख तो यही रहा हूँ !

शान्तनु—आश्चर्य है !

माधव—बेशक आश्चर्य है !

शान्तनु—मेरा पुत्र इतना उच्चहृदय और उदार है। पुत्रके गौरवके गर्वसे आज मैं फूला नहीं समाता।

माधव—लेकिन अपने लिए गर्व करनेको अब कुछ नहीं रहा।

शान्तनु—मेरे लिए मेरा पुत्र आज ब्रह्मचारी हो गया!

माधव—महाराज इस सत्यके पाशसे अपने पुत्रको छुड़ा दीजिए।

शान्तनु—किस तरह?

माधव—आप इस धीवरकी कन्यासे विवाह न कीजिए।

शान्तनु—उसे धर्मच्युत होना पड़ेगा।

माधव—क्यों, कुछ उसने तो अपने मनसे आपको पति माना नहीं है।

शान्तनु—देवव्रतको दुःख होगा।

माधव—कुछ नहीं होगा। आप बूढ़े हो गये हैं। इस अवस्थामें यह सुन्दरी स्त्री लेकर आप क्या करेंगे महाराज! उसका ख्याल छोड़ दीजिए।

शान्तनु—किन्तु इस बुढ़ापेमें मुझे एक स्त्रीकी जरूरत तो है ही। रोग-पीड़ा आदिके समय मेरी सेवा कौन करेगा?

माधव—बहुतसे दास और दासियाँ सेवा करनेके लिए हैं।

शान्तनु—उनकी कीहुई सेवामें स्नेह नहीं है।

माधव—और यह स्त्री आकर आपसे स्नेह करेगी? आप यह सोच रहे हैं? आप बूढ़े हैं, और वह, सुनता हूँ, ऋषिके वरदानसे अनन्त-यौवन पाये हुए है। यह 'कलम' नहीं लगेगी।

शान्तनु—कैसे नहीं। खुद महादेवके—

माधव—महाराज! इच्छाके अनुकूल युक्तियाँ सदा ही मिल जाती हैं। महाराज, कहता हूँ, यह विचार न कीजिएगा! इसका फल बहुत ही बुरा होगा!

शान्तनु—मित्र ! तुम मेरे 'विदूषक' हो। मन्त्री नहीं हो।

माधव—ऐसा मन्त्री संसारमें पैदा ही नहीं हुआ जो इच्छाके विरुद्ध महाराजके आगे सफल युक्ति उपस्थित कर सके। विदूषक तो विदूषक ही है!—महाराज, कहे देता हूँ, इसके लिए आपको पीछे पछताना पड़ेगा।

शान्तनु—पछताना पड़ेगा तो पछता लूँगा।

माधव—तो जाइए। सर्वनाशकी राह खुली हुई है, जाइए।

(क्रोधके भावसे प्रस्थान।)

शान्तनु—सुन्दरी है! अपूर्व सुन्दरी है! उसको अपने हाथकी मुट्ठीमें पाकर क्या छोड़ सकता हूँ! माधव तुम नीरस ब्राह्मण ठहरे! तुम क्या समझोगे!

[भीष्मका प्रवेश।]

शान्तनु—प्यारे पुत्र! तुमने मेरे लिए जन्मभरका ब्रह्मचर्य ग्रहण किया है?

भीष्म—पिताकी इच्छा ही मेरी इच्छा है।

शान्तनु—तुम्हारी इस भीष्म-प्रतिज्ञाके कारण देवोंने तुम्हारा नाम भीष्म रक्खा है। और मैं भी पुत्र, तुम्हारी इस अपूर्व पितृभक्तिके पुरस्कारमें तुमको स्वेच्छामृत्युका वर देता हूँ। तुम जब चाहोगे तभी तुम्हारी मृत्यु होगी।

भीष्म—पिताका आशीर्वाद शिरोधार्य है।

(भीष्मका प्रस्थान।)

(दूसरी ओरसे चिन्तितभावसे शान्तनु भी जाते हैं।)

सातवाँ दृश्य ।

स्थान—काशीके राजाका प्रमोदवन ।

समय—सायंकालसे कुछ पहले ।

[काशीनरेशकी कन्या अम्बा एक पेड़के नीचे पेड़की डालसे झुकी हुई खड़ी है ।]

अम्बा—इस समय केवल उन्हींकी याद आ रही है । इस ठंडी घनी छायावाले बरगदके पेड़के नीचे, गंगाके किनारे, पल्लवित प्रफुल्लित प्रकृतिके वसन्तोत्सवमें उनका वह सुन्दर सौम्य मुख याद आ रहा है। हे संसारकी सारी सुन्दरताके सारांश ! इसी कुंजवनमें, इसी सुनसान एकान्त स्थानमें, तुम पहले पहल मेरी आँखोंके आगे प्रातःकालके सूर्यके समान उदय हुए थे । तुम्हारा सुन्दर गोरा शरीर, गेरुए वस्त्रसे ढका हुआ था । तुम्हारे दोनों उज्ज्वल नील नेत्रोंमें स्नेह झलक रहा था । तुम अतृप्त दृष्टिसे एकटक मेरी ओर ताक रहे थे । मैंने चौंककर पूछा—" तुम कौन हो संन्यासी ?" तुम्हारी वह नीची नजर और नम्र उत्तर अबतक मुझे नहीं भूलता । तुमने कहा—" सुन्दरी, तुम्हारे रूपका भिक्षुक हूँ " ।—कौन जानता था कि तुम भारतके भावी सम्राट् हो ।—आश्चर्य है ! मनमें कभी सन्देह भी नहीं हुआ ! वह मनोहर शान्त मूर्ति, वह मन्द मुसकानसे सुहावना सौम्य मुखमण्डल, वह विस्मियपूर्ण भोली दृष्टि, वह गम्भीर चाल, वह गंभीर स्वर, वह ढंग, ये सब बातें क्या ऐसेवैसे घरके लड़केमें हो सकती हैं ? चन्द्रमा क्या कभी पृथ्वीतलमें उदय हो सकता है ?

[दो सखियोंका प्रवेश]

१ सखी—तुम यहाँ खड़ी हो ?

२ सखी—हम तुमको वहाँ खोज खोजकर हैरान हो गईं ।

अम्बा—क्यों, मेरी क्या जरूरत है ?

१ सखी—एक खबर है ।

अम्बा—क्या खबर है ?

२ सखी—सुनोगी तो खुश हो जाओगी ।

अम्बा—तो फिर कहो ।

१ सखी—कहें क्यों !

२ सखी—पहले बताओ, हमें दोगी क्या ?

अम्बा—चीज समझकर उसके दाम लगाये जाते हैं ।

१ सखी—तो कहें ?

२ सखी—कह दें ?

अम्बा—कहो न ?

१ सखी—खबर यह है कि तुम्हारे वे—

२ सखी—चुप—आज यहीं तक । और न कहना ।

अम्बा—वे कौन ?

१ सखी—बताऊँ ?

२ सखी—धीरे, अरी धीरे ! सुनकर सखीको मूर्च्छा न आ जाय ।

अम्बा—कौन सुनूँ तो ?

१ सखी—तुम्हारे प्राणेश्वर !

२ सखी—हस्तिनापुरके युवराज—

१ सखी—उन्होंने आकर हमसे पूछा—राजकुमारी कहाँ हैं !

२ सखी—हमने कह दिया, बाहरके ' प्रमोदवन ' में हैं ।

१—सखी—उसके बाद तुम्हारे प्रियतमने मेरी ओर ताक कर कहा—उनसे जाकर कह दो, मैं उनसे जरा मिलना चाहता हूँ ।

२ सखी--उसके बाद हम चली आईं ।

१ सखी—तो फिर अब देर क्यों है ! हम मंगलाचरण शुरू करें।

२ सखी—अच्छी बात है ।

दोनों गाती हैं ।

(नाच और गाना ।)

ठुमरी—एकताला । रागिनी टोडी ।

आयो ऋतुराज सजनि, उजियारी रुचिर रजनि,
कुंजन कल-तान मधुर, मुरली कहुँ बाजी ॥
डोलत मृदु मंद पवन, सिहरि उठत कुंज-भवन,
कुहु-कुहु-कुहु-ललित-तान मुखरित वनराजी ॥
पहन सखी श्याम वसन, पहन पुष्पमाला ।
चल सखि चल कुंज-भवन विरह-विधुर बाला ॥
चलके करें पुष्प चयन, चलके रचें पुष्पशयन,
ऐहैं हृदयेश फेरि, जीवनके साथी ॥

अम्बा—वे शायद आ रहे हैं ।

१—सखी वे ही हैं ।

अम्बा—कहाँ ? ना, वे नहीं हैं ।

२ सखी—कहाँ ? कोई नहीं है ।

अम्बा—फिर यह किसके पैरोंका शब्द था ?

१ सखी—पैरोंका शब्द कहाँ है ?

अम्बा—सूखे पत्तोंकी खड़ाखड़ाहट तो सुन पड़ी थी ।

२ सखी—सच तो यह है सखी, कि हमने कोई आहट नहीं सुनी ।

अम्बा—मेरा हृदय धड़पड़ करने लगा था ।

१ सखी—सम्भव है ।

२ सखी—संगत है ।

१ सखी—सखी देखो, जरा आँख उठाकर देखो, पूर्व आकाशमें शरद् ऋतुका पूर्ण चन्द्रमा हँस रहा है ।

२ सखी—आज क्या पूनो है ?

१ सखी—आज शरद-पूनो है ।

२ सखी—ठंडी हवा चल रही है ।

अम्बा—तो भी मेरी नस-नसमें गर्म खून लहरा है ।—और सब सखियाँ कहाँ हैं ?

१ सखी—उनकी जरूरत क्या है ?

२ सखी—प्रेमी और प्रेमिका मिलनेके समय अपने साथियोंका साथ रहना पसंद नहीं करते ।

१ सखी—केवल पसंद ही नहीं करते ? वे उनको एक आफत समझते हैं ।

२ सखी—मानो वे उनसे उनका सुख छीन लेंगे, ऐसा समझते हैं—चलो बहन, चलें ।

अम्बा—नहीं जी नहीं, सखियो !

१ सखी—नहीं नहीं—जायँगी—नहीं । देखेंगी कि प्यासे होठों पर शीतल चुम्बनकी स्निग्ध धारायें कैसे बरसती हैं ।

२ सखी—जब कि हमें खुद नसीब नहीं तब हम उन्हें देखकर क्या करेंगी ?—चलोजी चलो । (दोनों सखियोंका प्रस्थान)

अम्बा—पिंडलिया क्यों काँप रही हैं ? मैं ऐसी बच्चा तो हूँ नहीं—फिर आज भय और सन्देहसे छाती क्यों धड़क रही है ?

[अलक्षित भावसे भीष्मका प्रवेश ।]

भीष्म—लो वह तो यहीं है ।—दमभर इस सुवर्णकी प्रतिमाको देख तो लूँ, फिर इसे विस्मृतिके जलमें विसर्जन कर दूँगा। यह

कैसी अपूर्व गरिमा है ! नील निर्मल आकाशमें जैसे उज्ज्वल उषा हो; या जैसे दूरस्थित सागरकी लहरोंका कल-संगीत हो । इसे विसर्जन करना होगा !—स्वर्गके देवगण ! इस हृदयमें बल दो । संदेह और दुबिधासे काँपते हुए व्याकुल चित्तको इस समय शान्त करो। देवगण ! मुझे इस अग्निपरीक्षाके भीतरसे साफ बचाकर निकाल ले चलो । अहंकारको चूर कर दो । प्रलोभनको पीस डालो। और सारी प्रतिकूल प्रवृत्तियोंका गला घोंट दो—(अम्बाके पास जाकर धीमे स्वरसे) देवि ! आज मैं तुम्हारे निकट आया हूँ ।

अम्बा—आओ देवव्रत ! अबतक इस जगह मैं तुम्हारी ही याद कर रही थी·—तुम्हारे ही आनेकी राह देख रही थी। आओ प्रियतम !

भीष्म—देवि ! आज तुम्हारा भिक्षुक तुम्हारे पास आया है–

अम्बा—काहेके भिक्षुक हो तुम देव ! मैं तुम्हें कौनसी भिक्षा दूँगी ? अब मेरे पास और क्या है ? जो कुछ था, सो सब तुम्हारे चरणोंमें अर्पण कर चुकी हूँ—अब कुछ नहीं है । जिस दिन यह सुन्दर सौम्य मुख देखा, उसी दिन अपना सब कुछ तुमको अर्पण कर चुकी। तुम्हारे चरणोंमें यह रूप, यह भरी जवानी, यह हृदय—

भीष्म—ठहरो—

अम्बा—सब अर्पण कर चुकी हूँ। उस दिनसे और सब भूल गई हूँ—केवल तुम्हारी याद रहती है । तुम्हारी यादमें गर्मीके कितने ही लंबे चौड़े दिनोंको मैं अपनी अत्यन्त गर्म लंबी साँसोंसे और भी गर्म बना चुकी हूँ—कितनी ही लंबी रातोंमें सुनसान आधी रातके अन्धकारको अपने आँसुओंसे नहला चुकी हूँ ।

भीष्म—मगर अब वह सब भूल जाओ ।

अम्बा—प्राणेश्वर, जिस घड़ी तुमको देखा उसी समय सब भूल गई !

भीष्म—नहीं–नहीं, देवि, तुम यह क्या कह रही हो ?

अम्बा—क्यों देवव्रत ?

भीष्म—देवि, प्रेमकी सब पिछली बातोंको भूल जाओ । और—और—देवि, मुझे क्षमा करो—

अम्बा—यह कैसी पहेली है !

भीष्म—देवि, आज उस प्रेमसंन्यासी देवव्रतको भूल जाओ, जो एक दिन तुम्हारे चरणोंके आगे झुककर उद्ग्रीव, आतुर, सशङ्क, कम्पित-वक्ष और विशुष्क अधर हो रहा था । उस देवव्रतको भूल जाओ, जो एक दिन रूपके मन्दिरमें तुम्हारा उपासक था—भूखा-प्यासा तपाहुआ तुम्हारा प्रेमी था, काले राहुके समान, ज्वालामय अग्निके समान, अन्धी आँधीके समान स्वार्थ ही जिसका धर्म था । देवि, उस देवव्रतको आज भूल जाओ । उसके बदले आज आँख उठाकर इस नवीन संन्यासी देवव्रतको देखो—जिसका धर्म स्वार्थत्याग है; जिसका काम जन्मभर तक निरन्तर साधना करना है; जिसका व्रत केवल संन्यास है; जिसका प्रेम वासनासे उमड़ा हुआ नहीं है, कामसे उग्र नहीं है, स्वार्थसे अन्धा नहीं है, 'काम' के स्पर्शसे अपवित्र नहीं है, और सुखकी लालसासे तीव्र नहीं है । उसका यह प्रेम उन्मुक्त उदार है, आकाशकी तरह व्याप्त है, समुद्रकी तरह स्वच्छ है, पृथ्वीकी तरह सहनशील है, प्रातःकालके सूर्यकी तरह प्रकाशमान है, माताके स्नेहकी तरह शान्त और किसीकी अपेक्षा न रखनेवाला है, निर्मल है, उसमें कोई रुकावट नहीं है । उसी देवव्रतको देखो, तुम्हारे चरणोंमें—वह प्रेमका भिक्षुक नहीं, कृपाका भिक्षुक है ।

अम्बा—कुछ समझमें नहीं आता ! मैं जाग रही हूँ ? या सपना देख रही हूँ ? क्या कह रहे हो, कुछ नहीं समझ पाती । मुझे ब्याहनेके लिए क्या तुम नहीं आये राजकुमार ?

भीष्म—ठीक समझा तुमने ।

अम्बा—तो फिर तुम यहाँ क्या करने आये हो ?

भीष्म—इस जन्मभरके लिए तुमसे बिदा होने आया हूँ बहन !

अम्बा—बिदा होने ?

भीष्म—हाँ—जन्मभरके लिए ! अब मैं फिर इस आनन्दसे उज्ज्वल, मनोहर, मन्द मुसकानसे सुशोभित और प्रेममय मुखचन्द्रको नहीं देखूँगा—इस आवेशपूर्ण, नम्र, सरल, विह्वल, और नाचती हुई वर्षाकी धाराके समान सुमधुर प्रेममयी वाणीको नहीं सुनूँगा ।

अम्बा—क्यों देवव्रत ? आज क्यों ऐसे दारुण वचन कह रहे हो ? क्या हुआ है देवव्रत ?

भीष्म—प्रातःकालकी सुनहली किरणोंसे रञ्जित एक मेघ-महल आकाशमें लीन हो गया है; एक झङ्कार उठनेसे पहले ही थम गई है; तुम्हारे चरणोंके नीचे एक सोनेका स्वप्न टूटा हुआ पड़ा है ।

अम्बा—क्यों ? क्यों प्रियतम ?

भीष्म—तुम्हारे और मेरे बीचमें एक अग्निका समुद्र गरज रहा है—

अम्बा—क्यों ? बोलो ! बोलो !

भीष्म—मेरी बहन, मैंने सदाके लिए ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर लिया है ।

अम्बा—किस लिए ?

भीष्म—अपने पिताकी प्रसन्नताके लिए मैंने प्रतिज्ञा कर ली है । अब इस जन्ममें ब्याह करनेका मुझे अधिकार नहीं रहा—

अम्बा—निष्ठुर ! निठुर ! जो सच बात है वही क्यों नहीं कहते ! क्यों नहीं कहते कि अब मैं तुझे प्यार नहीं करता ।

भीष्म—प्यार करता हूँ । बहुत ही प्यार करता हूँ । अपने प्राणोंसे भी बढ़कर प्यार करता हूँ, लेकिन कर्त्तव्यसे बढ़कर नहीं । बस बहन, अब मुझे बिदा करो ।

अम्बा—देवव्रत ! (रोने लगती है ।)

भीष्म—देवि, अपने नेत्रोंके नीरमें मेरे कर्त्तव्यको न बहा देना । इन आँसुओंमें मेरी जीवनभरकी शान्तिको बहा दो—बीते हुए समयके सुखकी स्मृतिको बहा दो—इस लोक और परलोकको बहा दो, सब कुछ बहा दो; केवल मेरी प्रतिज्ञाको मत बहाना ।—इन आँसुओंके उच्छ्वास-पूर्ण सागरमें और सब नष्टभ्रष्ट होकर डूब जाय—बह जाय, केवल मेरा कर्त्तव्य पहाड़की तरह गर्वके साथ ऊँचा सिर किये खड़ा रहे ।—तो मेरी प्राणोंसे प्यारी बहन, अब मुझे जानेकी आज्ञा दो ।

अम्बा—ना ना—जाना नहीं !

भीष्म—देवव्रत ! अपनेको सँभाल ! हृदय दृढ़ कर !—बहन—जाता हूँ ।

अम्बा—प्रियतम, जाना नहीं !

भीष्म—आँखों पर घने गहरे अन्धकारका परदासा पड़ता जा रहा है ।—कुछ भी नहीं देख पड़ता !—कर्त्तव्य, मुझे राह दिखा । इस आँधीमें तेरा प्रकाश न बुझने पावे ।—भाग भाग देवव्रत । देवि, तो बस अब यही अंतिम भेंट है !

अम्बा—जाना नहीं ! जाना नहीं !

भीष्म—तो फिर बहन, बिदा होता हूँ ।

अम्बा—मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ—जाओ मत।

भीष्म—नहीं बहन, जाने दो।—जाता हूँ।

अम्बा—मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ।

भीष्म—मेरा कहा मानो।—जाता हूँ।

अम्बा—मेरे हृदयेश्वर।　　(लिपट जानेके लिए आगे बढ़ती है।)

भीष्म—नहीं।—जाता हूँ।　　(भीष्मका प्रस्थान।)

(अम्बा मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़ती है।)

दूसरा अङ्क ।

पहला दृश्य ।

स्थान—शान्तनुका शयनगृह ।

समय—रात ।

[शान्तनु बैठे और सत्यवती खड़ी है ।]

शान्तनु—बीस वर्षसे लगातार विषयभोग कर रहा हूँ, तो भी जी नहीं भरा ! बीस वर्षसे बराबर तुम मेरे प्यासे नेत्रोंमें जवानीका अमृत ढाल रही हो, तो भी पात्र लबालब भरा हुआ है ! तुम जैसी-की तैसी बनी हो ।

सत्यवती—मौतके मुँहमें पैर लटकाये हुए महाराज ! तृष्णा नहीं मिटी ? तो पियो, और पियो, मृत्युके समय तक पियो—और कितने दिन हैं ! जबतक जीवन है, पियो !

शान्तनु—सच कहा प्रिये, और कितने दिन जीऊँगा ! दिन दिन जीवन-सोपानसे तेजीके साथ नीचे लुढ़कता जा रहा हूँ ! मैं खुद समझ रहा हूँ कि जीवनके गढ़ेकी तह बहुत ही निकट है ! और कितने दिन बाकी हैं ! सच तुमने कहा सत्यवती, 'और कितने दिन हैं ।'

सत्यवती—और जितने दिन जीवन है, सुखसे पियो ।

शान्तनु—सुखसे ? सुखसे नहीं प्रिये । तुम्हारा सौन्दर्य अमृत नहीं है, वह बहुत ही तीव्र मदिरा है ।

सत्यवती—तो फिर उसे क्यों पीते हो ?

शान्तनु—पीनेका अभ्यास है सुन्दरी ! लोग मदिरा क्यों पीते हैं प्रियतमे ? यह देखो, तुम्हें जो ‘ प्रियतमे ’ कहता हूँ, सो यह भी अभ्यास है ।

सत्यवती—तुम्हारा यह प्रेम-संबोधन चाहता कौन है ?

शान्तनु—यह मैं जानता हूँ प्रिये, तुम नहीं चाहती, तो भी क्या करूँ, ऐसा ही अभ्यास पड़ गया है । यह अति सुन्दर रूप, यह अनन्त यौवन विप है—यह जानकर भी इसे पीता हूँ । इस सुन्दर शरीरको जानता हूँ कि मेरा नहीं है, तो भी उमंगके साथ इसे–इस एक हृदयहीन पत्थरकी मूर्तिको–गलेसे लगाता हूँ—कसकर लिपटाता हूँ ।

सत्यवती—महाराज, मेरी निन्दा करते हो ! तुम्हारी पुरुषकी जाति बड़ी ही कठिन और ममताहीन होती है ! तुम अगर कहीं कोई सुन्दरी स्त्री देखते हो तो अन्धलालसाके वशीभूत होकर उसके लिए दौड़ जाते हो—उसे उसकी माकी गोदसे छीनकर ले आते हो और आशा करते हो कि जिसके ऊपर तुम कामवश होकर कुत्सित दृष्टि डालते हो उसे तुम्हें प्यार करना ही होगा ।—तुम लोग ऐसे सुन्दर, ऐसे गुणवान्, ऐसे कल्याणरूप हो !—जैसे स्त्रीजातिके हृदय, इच्छा या स्वाधीनप्रवृत्ति है ही नहीं ! जैसे स्त्री तुम लोगोंकी खरीदी हुई दासी है ! स्त्री तुम्हारी ‘ रमणी ’ (रमण करनेकी वस्तु) है, स्त्री तुम्हारी ‘ कामिनी ’ (कामभोगकी सामग्री) है ! तुम प्रभु हो, और उसके बदलेमें स्त्री तुम्हारी केवल ‘भार्या’ (भरण-पोपण करने योग्य) है ! तुमने ऐश्वर्यके बलसे मेरा शरीर खरीद लिया है, लेकिन हृदय तो नहीं खरीदा ! उस पर तुम्हारा कुछ जोर नहीं ।

शान्तनु—मैं जानता था कि पति-पत्नीका मिलन पूर्वजन्मसिद्ध है ! वह किसीका बनाया हुआ नहीं है ।—यह शास्त्रकी बात है ।

सत्यवती—तो फिर तुमने पूर्वजन्मसे ही ये एक सौसे अधिक स्त्रियाँ अपने चरणोंमें बाँध रक्खी हैं? और महाराज, अगर इस जन्मके पापके कारण दूसरे जन्ममें आप पशुजन्म पावें, तब भी क्या आपके सैकड़ों स्त्रियाँ होंगी? अगर वृक्षका जन्म पाओ, तो भी?—नहीं नहीं महाराज! यह निश्चय है कि विधाताने जन्मजन्मान्तरके लिए एक ही पुरुषकी क्रीतदासी बनाये रखनेके लिए स्त्रीजातिको नहीं गढ़ा है।—आप शास्त्रकी दोहाई देते हैं? पर शास्त्र किसका बनाया हुआ है महाराज? पुरुषोंकी शान्ति, स्वच्छन्दता और सुभीतेके लिए पुरुषोंने ही शास्त्रोंकी रचना की है। अगर वे शास्त्रकार स्त्री होते तो फिर शास्त्रका विधान और ही तरहका होता। खरीदे हुए इस शरीरको लेकर तुम सन्तुष्ट रहो। यह हृदय तुमने नहीं पाया, और न कभी पाओगे।

शान्तनु—जानता हूँ प्रिये, तुम्हारे विमुख होठोंमें, तुम्हारे ठण्डे दृष्टिपातमें, तुम्हारे बरबस निर्जीव शिथिल आलिङ्गनमें मैं उसका अनुभव कर चुका हूँ। मैं जानता हूँ।—हाय अगर पहले जानता!

सत्यवती—जाननेकी चेष्टा तुमने कभी की थी प्रभू! उन्मत्त अहंकार और अन्धी वासनाने तुमको ऐसा अपने बस कर रक्खा था कि तुमने कभी किसीसे पूछा भी नहीं—मैं कौन हूँ? मेरे स्वभावमें क्या कमी है—क्या हीनता है? मैं कभी किसीको पहले यह हृदय दे चुकी हूँ या नहीं, किसीके उपभोगकी सामग्री बन चुकी हूँ या नहीं?—जैसे तुमने यह अपूर्व रूप देखा, देखा कि जवानीकी तरंगें अंगअंगमें लहरा रही हैं—वैसे ही मनको अपने हाथसे खो बैठे! उन्मत्त अधीर, अन्ध, कामकी गुलाम—ऐसी ही तो तुम्हारी पुरुषजाति है! धिक्कार—सैकड़ों धिक्कार इस जातिको।

शान्तनु—सच तुमने कहा सत्यवती। यद्यपि तीखा है, मगर सच है । क्या किया जाय प्रियतमे ! रोगीकी दवा मीठी बहुत ही कम होती है। धनके बलसे रूप खरीदा जा सकता है, पर प्रेम नहीं । तुम्हारा अपराध नहीं, अपराध मेरा है ।

सत्यवती—इतने दिनके बाद समझमें आया ।

शान्तनु—मुझसे भूल हुई ।

सत्यवती—उसका फल भोग रहे हो । मैं क्या करूँ ! मुझे झिड़कना वृथा है ।

शान्तनु—(चिन्तित भावसे) अगर जानता—

सत्यवती—अगर जानते ? इससे बढ़कर तो दुःख यह है कि अब भी कुछ नहीं जानते ।

शान्तनु—जानता हूँ ।

सत्यवती—कुछ भी नहीं जानते । इतना ही जानते हो कि मैं धीवर कन्या हूँ, और ऋषिके वरदानसे अपूर्व सुन्दरी और अनन्त यौवनवाली हूँ । इतना ही जानते हो कि मैंने तुमसे दो पुत्र उत्पन्न किये हैं। मेरे पहले अन्धकारमय इतिहासको तुम क्या जानो ! उस बातको अगर जानते तो आगकी लौ पर छोड़े हुए पत्तेकी तरह सूखकर जलकर काले पड़ जाते—

शान्तनु—सो क्या प्रिये ! वह पहलेका इतिहास क्या है ?

सत्यवती—उसे जानकर क्या करोगे ? कभी जाननेकी इच्छा भी नहीं करना !—और जो कुछ दिनकी थोड़ीसी जिन्दगी है उसे अन्धकारमें ही बिताओ । तुम बूढ़े हो । जानना नहीं ।

शान्तनु—जो होना हो—हो, मैं जानना चाहता हूँ ।

सत्यवती— ना ना कह नहीं सकती। अगर तुम्हारे सामने वह बात मैं कभी कहना चाहती हूँ तो महाराज, जीभ नहीं हिलती। अगर जीभसे निकलती है तो भयसे सूखे हुए होठ जल्दीसे आकर मुँह बंद कर देते हैं। आँखोंके आगे अन्धकार देखती हूँ—जगत्में एक आर्त-नादके सिवा और कुछ नहीं सुन पाती। मान जाओ महाराज! उन शब्दोंके निकलते ही तुम्हारा पितृकुल आर्त्तनाद कर उठेगा और मातृ-कुल एक साथ काँप उठेगा। (तेजीके साथ प्रस्थान।)

शान्तनु—वह अन्धकारमय इतिहास क्या है! यह इशारा गूढ़ है—इसकी अपेक्षा सीधी भाषामें कह डालना ही अच्छा था।—कैसी भयानक स्नेहहीन सुन्दरी स्त्री है! पल भरमें संसारमें प्रलय मचा सकती है।

[चित्रांगद और विचित्रवीर्यका प्रवेश।]

दोनों—पिताजी पिताजी!—आज—

शान्तनु—जाओ, दिक न करो। (दोनोंका प्रस्थान।)

शान्तनु—ये कौन हैं।—ये क्या मेरी सन्तान हैं?—यह क्या?—संसार भर पर जैसे एक कहासा सा छाया जा रहा है।

शान्तनु—आओ मित्र! माधव! तुमने सच कहा था।—बहुत ही सच बात कही थी।

माधव—कौनसी बात महाराज?

शान्तनु—कहूँगा नहीं। नहीं बताऊँगा। यदि बतला दूँगा तो तुम बहुत ही विज्ञ भावसे सयाने बनकर कहोगे—'मैंने तो कहा था'। उपदेश तीखा होता है, लेकिन यह 'मैंने तो कहा था,' बहुत ही तीखा लगेगा। मित्र! मेरे सब अपराधोंको क्षमा करो। आओ, मैं तुमको गलेसे लगा लूँ। (गलेसे लगाते हैं।)

माधव—मेरी समझमें कुछ नहीं आता ।

शान्तनु—उसकी जरूरत भी नहीं है ।

माधव—महाराज आज सुस्थ हैं ?

शान्तनु—सुस्थ ?—खूब अच्छी तरह !

माधव—देखूँ—(नाड़ी देखकर) यह क्या महाराज !

शान्तनु—क्यों क्या देखा ?

माधव—आपको तो ज्वर हो रहा है । वैद्यको बुलाऊँ ?

शान्तनु—तीन लोकमें ऐसा वैद्य नहीं है, जो इस रोगकी दवा कर सके । ज्वर, वायु, विसूचिका, भयंकर यक्ष्मा, आदि बहुतसे रोग हैं; जो मृत्युकी सेनाके समान मनुष्यके स्वास्थ्यरूपी किलेको घेरे रहते हैं । लेकिन इनके सिवा और भी बहुतसी व्याधियाँ मनुष्यके शरीरमें रहती हैं, जिनका नाम आयुर्वेदमें नहीं है, जो धीरे धीरे जीवनकी नींव-को गुप्त रूपसे खोदती रहती हैं, जो मनुष्यके मस्तकमें लम्बी रेखायें डाल देती हैं, आँखोंके तले गहरी स्याही जमा देती हैं । इन सब बा-तोंको जाने दो ।—सुनो, तुम मेरे केवल मित्र ही नहीं हो—

माधव—मैं विदूषक हूँ ।

शान्तनु—तो जितना हो सके व्यंग करो, कुवचन कहो; सिर झुका-कर सब सह लूँगा । माधव ! अब मैं एक विनय करता हूँ । मेरे मरनेके बाद इन दोनों बालकोंकी देखरेख तुम रखना—ना, कुछ कहो नहीं ! और सुनो—देवव्रतको मेरे पास भेज दो । कुछ नहीं मित्र ! कुछ न कहो ! फिर किसी दिन, जो कहना हो, कहना । इस समय मेरी अवस्था कोई बात सुनने योग्य नहीं है ।—जाओ मित्र । (माधवका प्रस्थान ।)

शान्तनु—अपने पुत्रको संन्यासी बनाकर पिताका विषयभोग—यह कैसी बुरी बात है—ऐसा अत्याचार, स्वेच्छाचार, क्या प्रकृति

सह सकती है ? विशृंखला—यह नियमका व्यतिक्रम—मिट गया। प्रकृतिने अपने दुर्गको फिर पा लिया।

शान्तनु—सौभनरेश हैं ? [शाल्वका प्रवेश।]

शाल्व—महाराज।—

शान्तनु—कुछ कहो मत।—और—और—सौभनरेश सुस्थ हो?

शाल्व—मैं?—सुस्थ हूँ।

शान्तनु—प्रसन्न हो सौभराज?

शाल्व—प्रसन्न हूँ।

शान्तनु—यथोचित रूपसे तुम्हारा अतिथिसत्कार हुआ?

शाल्व—खूब अच्छी तरह।

शान्तनु—उसका बदला खूब तुमने दिया सौभराज! उसके बद-लेमें मैं तुमसे एक भिक्षा चाहता हूँ।

शाल्व—क्या शान्तनु?

शान्तनु—मेरे सामनेसे दूर हो जाओ। अब न आना। जाओ, जाओ शाल्व! (शाल्वका प्रस्थान।)

शान्तनु—दुःख नहीं हुआ। ठीक हुआ! भोगलालसाका ठीक दण्ड पाया। सन्तानको सुखसे वंचित करके—ना ना कोई दुःख नहीं है।—ईश्वर! तुम हो। तुम्हारा नियम बहुत ही सच्चा है। पिताका कर्त्तव्य है कि वह पुत्रके कल्याणकी कामनामें अपने सुखका खयाल न करे। मगर मैंने सन्तानका सुख—(रुँधी हुई आवाजमें) ना ना कोई दुःख नहीं है।

[भीष्मका प्रवेश और प्रणाम करना।]

शान्तनु—आगये देवव्रत?

भीष्म—आगया पिताजी। तबीयत कैसी है?

शान्तनु—अच्छी है देवव्रत। पुत्र, तुमसे मैं एक भिक्षा चाहता हूँ। क्या वह भिक्षा मुझे दोगे देवव्रत?

भीष्म—यह आप क्या कह रहे हैं! पिताकी आज्ञासे मैं अपने प्राण तक दे सकता हूँ—

शान्तनु—प्यारे पुत्र, मैं यह जानता हूँ। अच्छा तो सुनो—प्राणाधिक पुत्र, मरनेसे पहले मैं तुमसे एक अनुरोध किये जाता हूँ कि तुम ब्याह करना और अवश्य करना। मेरा यही एकमात्र अनुरोध है। इस लोकको तो तुमने मेरे लिए नष्ट कर दिया है, मगर परलोकको मत बिगाड़ना।—ना ना देवव्रत, मैं इस बातका प्रतिवाद बिल्कुल नहीं सुनना चाहता—ब्याह अवश्य करना।—और—क्या कहूँ बेटा! मरनेके बाद मुझे क्षमा करना!

भीष्म—यह आप क्या कह रहे हैं पिताजी!

शान्तनु—ना ना, कुछ भी प्रतिवाद न करो। टुकड़े टुकड़े हो जायगा—हृदय टुकड़े टुकड़े हो जायगा! जाओ देवव्रत, जाओ प्राणाधिक—और एक बात है—बेटा—जहाँतक हो सके दयाके भावसे मेरे अपराधका विचार करना।—जाओ। मैं सोऊँगा। दरवाजा बंद कर लो। (कातर शब्द करके लेट जाते हैं।)

दूसरा दृश्य।

स्थान—हस्तिनापुरके एक छोटे घरका आँगन।

समय—प्रातःकाल।

[धीवरराज और उसका मन्त्री।]

धीवर०—दामादके घर आया, लेकिन यहाँ कोई कुछ खोज-खबर ही नहीं लेता!—भला लेता है मन्त्री?

मन्त्री—कहाँ लेता है !

धीवर०—तो भी मैं एक राजा हूँ।

मन्त्री—लेकिन इस बातको इस राजभवनका कोई आदमी मानता ही नहीं।

धीवर०—मानना ही होगा। इसके सिवा मेरा नाती ही तो बादको इस राज्यका राजा होगा। होगा न मन्त्री ?

मन्त्री—सो तो होगा हां।

धीवर०—लेकिन इस बातका कोई कुछ खयाल ही नहीं करता।

मन्त्री—कहाँ खयाल करता है !

धीवर०—इस बातको जैसे लोग उड़ा ही देना चाहते हैं।

मन्त्रा—यही तो देख पड़ता है।

धीवर०—लेकिन यह हो नहीं सकता। मैं इसका दावा करूँगा।

मन्त्री—जब मानेंगे तब तो।

धीवर०—मानेंगे नहीं ? मैं महाराजका ससुर हूँ। यह बात नहीं मानेंगे ?

मन्त्री—कहाँ मानते हैं !

धीवर०—नहीं मानते ?

मन्त्री—जी बिल्कुल नहीं।

धीवर०—क्यों ? यह तो बहुत ही सीधी बात है। महाराजने मेरी लड़कीसे ब्याह किया है—इस नातेसे आदमी ससुर नहीं होता तो क्या होता है ? यह तो सीधीसी बात है।

मन्त्री—बहुत ही सीधी बात है।

धीवर०—लेकिन यह समझनेमें इन लोगोंको इतना समय लग रहा है ?

मन्त्री—बहुत अधिक समय लग रहा है महाराज।

धीवर०—हूँ (मूछों पर ताव देता है ।) लेकिन, कैसा ठाठ किया है मन्त्री !—चेहरेको बिलकुल भले आदमियोंके चहरेसे मिला दिया है—क्यों न ?

[नौकरके साथ विचित्रवीर्यका प्रवेश ।]

धीवर०—यह लो । यह मेरा नाती है । आओ भैया ।

विचित्र०—(नौकरसे) यह कौन है ?

नौकर—यह एक गँवार जंगली है ।

धीवर०—(क्रोधसे) क्या ?—जंगली ?

नौकर—चलो राजकुमार ! (नौकरसहित विचित्रवीर्यका प्रस्थान ।)

धीवर०—(आश्चर्यसे) ऐं ! पहचान लिया । मन्त्री ! ठीक पहचान लिया । इतना ठाठ किया सब वृथा हुआ !

मन्त्री—राजासाहब खैरियत नहीं जान पड़ती ।

धीवर०—क्या, नहीं जान पड़ती !

मन्त्री—खिसक चलिए राजासाहब, पहलेहीसे खिसक चलिए ।

धीवर०—ऐं ! ऐं ! खिसक चलूँ ! खिसक क्यों चलूँ ?

मन्त्री—नहीं तो गर्दना देकर निकाल देंगे ।

धीवर०—ऐं ! ऐं ! गर्दना ! गर्दना ! कहते क्या हो

मन्त्री—जो स्त्रीके भयसे बिना बुलाये दामादके घर भाग आता है उसकी खातिर दामादके यहाँ इसी तरह होती है राजासाहब !

धीवर०—उसकी शायद इसी तरह खातिर होती है ।

मन्त्री—मैं तो बराबर यही देखता आता हूँ !

धीवर०—यही देखते आ रहे हो ?

मन्त्री—ढंग कुछ अच्छे नहीं देख पड़ते । राजासाहब ! खिसक चलिए ।

धीवर०—मैं नहीं जाऊँगा। मैं राजाका ससुर हूँ। मुझे जगह देनेके लिए वे लोग बाध्य हैं।

मन्त्री—जगह तो उन्होंने दी है—इस अस्तबलमें !

धीवर०—क्या अस्तबलमें ! क्या कहा मन्त्री ? यह अस्तबल है ?

मन्त्री—जी हाँ अस्तबल है।

धीवर०—अस्तबल है ?

मन्त्री—कह तो रहा हूँ अस्तबल है।

धीवर०—मन्त्री, तुमने सुननेमें गल्ती की है। मैं राजा हूँ। मैं राजाका ससुर हूँ। मेरे रहनेके लिए—

मन्त्री—अस्तबल है।

[नौकरोंके साथ चित्रांगदका प्रवेश।]

धीवर०—यही तो मेरा बड़ा नाती है ?

नौकर—तुम्हारा नाती।

मन्त्री—कहते हैं यही तो महाराज शान्तनुके बड़े कुँअर हैं ?

नौकर—हाँ तो इससे क्या ?

धीवर०—तो बस फिर, यह मेरा नाती हुआ।

नौकर—तुम्हारा नाती—हाः हाः हाः हाः हाः हाः !

धीवर०—हँसते क्यों हो ?—मन्त्री !

मन्त्री—जी राजासाहब ! सो तो कुछ मेरी समझमें भी नहीं आता।—तुम लोगोंका राजा कौन है ?

धीवर०—हाँ राजा कौन है ?

नौकर—महाराज शान्तनु।

धीवर०—मैं उन्हींका ससुर हूँ। (नौकर फिर जोरसे हँसता है।)

चित्रांगद—(नौकरसे) कौन है यह ?

नौकर—एक पागल है ।

चित्रांगद—राजभवनमें पागलकी क्या जरूरत है ? निकाल दो ।

धीवर०—क्या ! निकाल दोगे कैसे !

चित्रांगद—(नौकरोंसे) निकाल दो। (कई नौकरोंके साथ प्रस्थान ।)

धीवर०—कैसे !—मन्त्री !

नौकर—निकल जाओ ।

धीवर०—निकल क्यों जाऊँ ?—मैं महाराजका ससुर हूँ । राजा कहाँ है ?

नौकर—निकल जाओ । नहीं तो गर्दना देकर बाहर कर देंगे ।

धीवर०—क्या ?—मैं राजाका ससुर हूँ । मुझे गर्दना ! (कमान पर तीर चढ़ाकर ।) लडूँगा—लडूँगा ।

नौकर—आ रे !—　　　　(तरवार खींच लेता है ।)

धीवर०— ओ बाबा !　　　　(पीछे हटता है ।)

नौकर—निकल जाओ ! (गर्दनमें हाथ देता है ।)

धीवर०—अच्छा जाता हूँ ।

[माधवका प्रवेश ।]

माधव—ए ! ए ! क्या करते हो ! क्या करते हो !

नौकर—बाहर निकाले देता हूँ ।

माधव—क्यों ?

नौकर—राजकुमारका हुक्म है ।

माधव—ना ना, करते क्या हो !—ये महाराजके ससुर हैं ।

नौकर—ऐं !—मैं समझा था, कोई पागल है ।

माधव—पागल होनेसे क्या ससुर नहीं होता ? आइए महाशय ! कुछ खयाल न करिएगा ।

धीवर०—कुछ खयाल न करूँगा ? खूब खयाल करूँगा । मेरा अपमान ! मैं लड़ूँगा । तुम नहीं जानते, मैं राजा हूँ !—मन्त्री !

मन्त्री—राजासाहब टाल जाइए—टाल जाइए !

धीवर०—हाँ ! टाल जाऊँ ? टाल जाऊँ ?

(मन्त्री इशारा करता है ।)

धीवर०—अच्छा अबकी क्षमा करता हूँ !—अच्छा अब बताओ राजा कहाँ हैं ?

माधव—वे बहुत ही बीमार हैं । किसीसे मुलाकात करनेकी हालत उनकी नहीं है ।

धीवर०—लेकिन इसीसे क्या मुझे रहनेके लिए घोड़ेके अस्तबलमें जगह मिलनी चाहिए ?—नहीं जानते, मैं राजाका ससुर हूँ !

माधव—भूल हुई ! आपके रहनेके लिए जगह मैं ठीक किये देता हूँ । आइए ।

धीवर०—कहाँ ?

माधव—पागलखानेमें ।

धीवर०—पागलखाना कैसा !

माधव—देखिए, आप और राजाका नया शिकारका घोड़ा एक साथ ही राजमहलके द्वार पर आये थे । मैंने हुक्म दिया कि आपको पागलखानेमें और घोड़ेको अस्तबलमें रक्खें। परन्तु आदमियोंने भूलसे आपको अस्तबलमें और घोड़ेको पागलखानेमें पहुँचा दिया।—सिपाही, इन्हें पागलखानेमें पहुँचा आओ !

धीवर०—क्या मुझे ?

माधव—(सिपाहीसे) ले जाओ । (प्रस्थान ।)

मन्त्री—चलिए राजासाहब, कुछ कहिएगा नहीं ।

धीवर०—क्यों ?

मन्त्री—ढंग अच्छे नहीं देख पड़ते ।—

धीवर०—अच्छे नहीं देख पड़ते ?

[धीवरराजकी रानीका प्रवेश ।]

धी० रानी—यह लो, यहाँ आगया !

धीवर०—ओ बाबा ! (काँपता है ।)

धी० रानी—यहाँ भाग आया है कलमुहे ? जो सोचा था वही बात है ! चल, घर चल ।

धीवर०—मैं नहीं जाऊँगा । क्यो जाऊँ !—मन्त्री !

मन्त्री—राजासाहब ! घर लौट चालिए । कुछ न कहिए । यहाँकी खातिरदारीका ढंग तो आपने देख ही लिया है ।

धीवर०—चाहे जो हो; मैं घर न जाऊँगा ।

धी० रानी—नहीं जायगा ? (कान पकड़ती है ।)

धीवर०—ना ना, चलो—चलता हूँ ।

धी० रानी—चल ।   (सबका प्रस्थान ।)

तीसरा दृश्य ।

स्थान—हस्तिनापुरके अन्तःपुरका एक हिस्सा ।

समय—रात ।

[चिन्तित भावसे भीष्म टहल रहे हैं ।]

भीष्म—इधर कई दिनसे पृथ्वी और आकाश पर अनेक अमंगलके चिह्न देख पड़ रहे हैं । ये अवश्य ही किसी होनेवाले अकल्याणकी सूचना दे रहे हैं । आग्नेय कोणमें नित्य धूमकेतु देख पड़ता है, दिन-दोपहरको सियारोंकी आवाज सुन पड़ती है, गृहचूड़ाओंपर कौए कर्कश

काँ काँ शब्द करते हैं। कई दिनोंसे महाराजकी बुरी हालत है। वे कातर भावसे रोगशय्या पर पड़े हुए हैं। मालूम नहीं क्या होगा।— जगदीश, पिताको बचाओ, बदलेमें मेरे प्राण ले लो। (प्रस्थान।)

[चित्रांगद और विचित्रवीर्यका प्रवेश।]

चित्रां०—कहाँ हैं दादा ?

विचित्र०—यहीं तो थे।

चित्रां०—तो जान पड़ता है, वे पिताजीके पास होंगे। वे तो आठों पहर पिताके सिरहाने बैठे रहते हैं।

विचित्र०—कभी कभी बस यहीं चले आते हैं।

चित्रां०—इधर कई दिनसे वे बहुत चिन्तित देख पड़ते हैं।

विचित्र०—आजकल तो हम लोगोंसे भी वैसे प्यारकी बातें नहीं करते।

चित्रां०—उन्हें फुरसत कहाँ है !

विचित्र०—तुम दादाको प्यार करते हो ?

चित्रां०—करता हूँ।

विचित्र०—खूब ?

चित्रां०—खूब।

विचित्र०—मेरी तरह ?

चित्रां०—तुमसे भी बढ़कर।

विचित्र०—हिश ! यह हो ही नहीं सकता।

चित्रां०—चलो देखे, वे कहाँ गये ? (प्रस्थान।)

[चिन्तित भावसे सत्यवतीका प्रवेश।]

सत्यवती—बड़ा अच्छा वर है ऋषिवर ! यह अनन्त जवानी बुढ़ापेकी गोशालामें मरण तक बँधी रहेगी। अथवा महर्षि, तुम ही क्या करो !

मैं विलासकी लालसामें मूढ़ हो रही थी, मैंने ही यह वर छाँटकर माँगा था । मैं समझी थी 'अनन्त जवानी' के माने 'अनन्त–संभोग' है । परन्तु यह वर—मृगतृष्णाके समान संभोगकी वासनाको उत्तेजित करता है, लेकिन कभी उसे तृप्त नहीं करता; यह होनीकी तरह मेरे मत्थेमें लिख गया है और इसने मुझे दासी बना लिया है; यह रोगके कीटाणुओंके समान मेरे खूनमें मिलकर नस नसमें व्याप गया है । तुमने यह क्या किया ऋषिवर ! अपना वर फेर लो, या मुझे स्वतन्त्र स्वाधीन कर दो ।

[माधवका प्रवेश ।]

माधव—वही हो रानी । इस घड़ीसे अब तुम स्वतन्त्र, स्वाधीन हो । अनन्त जवानीको बिना रोक-टोकके भोगो । महाराजका स्वर्गवास हो गया ।

सत्य०—यह क्या ! महाराजका स्वर्गवास हो गया ?

माधव—हाँ अब अनन्त जवानीका भोग करो ।—सब आफत मिट गई—सोच क्या रही हो पतिकी हत्या करनेवाली ?

सत्य०—मैं ?

माधव—हाँ तुम ।

सत्य०—मैंने पतिकी हत्या की है ?

माधव—अपने हाथसे किसीके पेटमें छुरी भोंक देनेको, या किसी भोले भाले मनुष्यको विष मिश्रित मदिरा पिला देनेको ही हत्या नहीं कहते । ममताहीन व्यवहार मर्मस्थल पर छुरीसे भी बढ़कर चोट पहुँचाता है--

सर्पसे भी बढ़कर भयानक कृतघ्नता आकर चुपचाप डसलेती है। अपने हेय स्वेच्छाचार और अपने व्यभिचारसे तूने पतिकी हत्या की है पापिनी !

सत्य०—क्या अनापशनाप बक रहे हो वृद्ध विदूषक ! तुम वृद्ध हो, मैं हस्तिनापुरकी रानी तुम्हें क्षमा करती हूँ ।—जाओ ।

माधव—पिशाची-कुलटा ! (प्रस्थान ।)

सत्य०—इतनी मजाल !—वृद्ध विदूषक तुम्हारे इस अहंकारको दूर कर दूँगी—इस अकड़को मिटा दूँगी ।—'पिशाची कुलटा !' और अगर यही सच हो तो इसमें आक्षेप काहेका है ! इसमें मेरा क्या दोष है ?— अगर स्वार्थान्ध पुरुष माथे पर झुर्रियाँ पड़ने पर भी, गालोंका मांस लटक आने पर भी, दाँत गिर जाने पर भी, जीर्ण शीर्ण-अपाहिज हो जाने पर भी, इन्द्रियोंके शिथिल पड़ जाने पर भी, उभरती हुई जवानी, व्यग्र आलिंगन और अनुरागपूर्ण उष्ण चुम्बनको चाहता है; तो वह क्या मेरा दोष है ?—होगा ! महाराजकी मृत्यु हो गई है ।—अब मैं पराधीन नहीं हूँ ।—आज मैं जो चाहे कर सकती हूँ—स्वेच्छाधीन हूँ—ओहो कैसा उल्लास है !—हाँ, बदला लूँगी—संभोग करूँगी; संकोच काहेका है ? बचपनमें धर्म दिया है; मैं धीवरकी बेटी हूँ—अनन्त यौवना हूँ।

[अलक्षित भावसे शाल्वका प्रवेश ।]

शाल्व—रानी !

सत्य०—(चौंककर) सौभराज ?

शाल्व—महाराजकी मृत्यु हो गई ।

सत्य०—सुन चुकी हूँ !

शाल्व—आजसे—

सत्य०—क्या कहते हो ?

शाल्व—आजसे महारानी स्वतन्त्र—स्वाधीन हैं !

सत्य०—सो जानती हूँ राजासाहब ।

शाल्व—तो फिर—(आगे बढ़ता है)

सत्य०—ठहरो लंपट! याद रखना, मैं हस्तिनापुरकी महारानी हूँ!

शाल्व—हस्तिनापुरकी महारानी! अब इस चकमेकी क्या जरूरत है! मैं हस्तिनापुरके शीश महलमें, एक महीनेसे अधिक हुआ, अतिथिरूपसे ठहरा हुआ हूँ। तुम जानती हो, मैं तुम्हारे रूपके द्वारका भिक्षुक हूँ।—आज तुम बन्धन-मुक्त हो!

सत्यवती—सोचनेके लिए समय दो।

शाल्व—सोचनेका समय बीत चुका।

सत्य०—(अनमने भावसे) ऋषिवर, तुमने यह शाप-रूप वर क्यों दिया था?—ना ना, जाओ—चले जाओ—अपने देशको लौट जाओ।

शाल्व—अब यह संकोच क्यों? आओ— (आगे बढ़ता है।)

सत्य०—सावधान! सुलगती हुई लालसाकी आगको मत भड़काओ।—यह ज्वालामुखी पर्वत है! जाओ, हट जाओ; इस हृदयमें जंजीरसे जकड़े हुए काम-केसरीको कुपित मत करो।

शाल्व—क्यों— (हाथ पकड़ता है)

सत्य०—चले जाओ—तुम्हारा यह काम-स्पर्श आज मेरे सारे शरीरको रोमांचित कर रहा है।—चले जाओ। (हाथ छुड़ा लेती है।)

शाल्व—यह कैसी मूर्ति है! (पीछे हट जाता है।)

सत्य०—ना ना प्रियतम! जो डूब ही रही हूँ तो इसी जलमें डूबूँगी। आग और हवाका साथ हो गया है—तो अब मेरा यह जीवन छार-खार ही हो जाय। तो फिर—आज—इस शून्य जीवनको प्रलयका अन्धकार आकर ढक ले। वह अन्धकार आज महाशून्यमें चक्कर खाती हुई दो ज्वालामयी पृथ्वियोंके समान दो अभिशप्त आत्माओंको प्रदीप्त करेगा!—आओ प्रियतम— (हाथ पकड़ती है।)

[भीष्मका प्रवेश ।]

भीष्म—ठहर नारी ।—ओः कैसा घृणित है ! कैसा भयानक है ! कैसा बीभत्स है ! यह भी विश्वमें है ?—दयामय ! यह भी क्या तुम्हारी सृष्टि है ? जिनकी सृष्टि यह शान्तिमयी चन्द्रमाकी चाँदनी है, यह हरी-भरी फूली-फली पृथ्वी है, यह नक्षत्रोंसे अलंकृत नील आकाश है, यह स्वच्छ लहरोंवाली नदी है, यह पक्षियोंका मधुर संगीत है, यह सुगन्ध है, यह मन्द पवन है, उन्हींकी सृष्टि यह भी है !—और स्नेहमयी रमणी ! अन्तको क्या यह भी तुमसे संभव है ? जिसके हृदयमें बहनकी प्रीति अपनी छाया फैलाती है, कन्याका स्नेह सुगन्ध फैलाता हुआ फूलता है; जिसके हृदयसे धीरे धीरे वनिताका प्रेमालिंगन लहलहा उठता है; जिसकी छातीसे माताकी सुस्निग्ध अमृतधारा झरती है, उसीके हृदयमें क्या यह भी संभव है ? जहाँ पर स्नेहकी गंगा बहती है, जहाँ पर आत्मबलिदान अपनी झलक दिखाता है, वहीं पर क्या यह भी संभव है ?—पापिनी ! अभी पिताकी लाश पड़ी हुई है—उसका दाह-सत्कार तक नहीं हुआ ! अभी पिताकी अन्तिम गर्म साँसोंसे महलकी वायु भी गर्म बनी हुई है। अभी तक पिताका आत्मा तुझे घेरे हुए है। नारी, सावधान । पिताकी स्मृतिके अक्षय पवित्र तीर्थको गंदा न करना।—(शाल्वसे) और महाराज ! आज इस कालिमाराशिको तुम्हारे रुधिरसे धोऊँगा । लंपट ! तरवार निकाल । (अपनी तरवार निकाल लेते हैं।)

सत्य०—देवव्रत !

भीष्म—चुप पापिनी । आज मैं अन्धा हो रहा हूँ । क्या कर रहा हूँ कुछ नहीं जानता । (शाल्वसे) तरवार निकाल, या दूर हो जा अभी इस महलसे व्यभिचारी !

सत्य०—देवव्रत, सूनूँ तो, तुम आज्ञा करनेवाले कौन हो ?

भीष्म—मैं भीष्म हूँ ।

सत्य०—देवव्रत ! इसी दम यह महल छोड़कर चले जाओ । मैं हस्तिनापुरकी महारानी आज्ञा देती हूँ ।

भीष्म—चला जाऊँगा । लेकिन उससे पहले इस राहके कुत्तेको दूर कर जाऊँगा ।—(शाल्वसे) तरवार निकाल ।

शाल्व—मैं जाता हूँ । (प्रस्थान ।)

भीष्म—जाओ । अगर फिर कभी हस्तिनापुरमें पैर रक्खा तो शाल्वका धड़ ही घरको लौटकर जायगा । यह निश्चय जानना ।—जय हो महारानी !—मैं जाता हूँ ।　　　　(प्रस्थान ।)

(सत्यवती क्रोधसे होठ चबाती हुई जाती है ।)

चौथा दृश्य ।

स्थान—गन्धर्वराज चित्रांगदका प्रमोदवन ।

समय—रात ।

[गन्धर्वराज चित्रांगद, उसका मित्र चित्रसेन और सब मुसाहब बैठे हैं । सामने नाचनेवालियाँ खड़ी हैं ।]

चित्रसेन—मित्र ! सुना है, प्रबल प्रतापी हस्तिनापुरके महाराज शान्तनुका देहान्त हो गया है, जिनकी रानी अपूर्व सुन्दरी और अनन्त-यौवना है !

चित्रां०—अनन्तयौवना ?

चित्र०—तुमने सुना नहीं मित्रवर ? वह महर्षिके वरसे अनन्तयौवना है ।

चित्रां०—कौन ऋषि चित्रसेन ?

चित्र०—महर्षि पराशर !

चित्रां०—सम्राट् शान्तनु मर गये ? उनके पुत्र हैं ?

चित्र०—बड़े पुत्र देवव्रत हैं, जिन्हें लोग भीष्म कहते हैं। वे जगत्में अजेय हैं। उन्हें कोई नहीं जीत सकता।

चित्रां०—भीष्मको जगत्में कोई नहीं जीत सकता ?

चित्र०—सुना है मित्र ! किन्तु भीष्म इस समय वनवासी है

चित्रां०—किस लिए ?

चित्र०—माळूम नहीं।

चित्रां०—तो इस समय हस्तिनापुरका सिंहासन शून्य है ?

चित्र०—कौन कहता है सिंहासन शून्य है ! उसी अनन्त यौवना रानीका बड़ा पुत्र आज हस्तिनापुरके राज्यका मालिक है।

चित्रां०—उसका क्या नाम है ?

चित्र०—उसका नाम चित्रांगद है।

चित्रां०—क्या नाम बताया ?

चित्र०—चित्रांगद।

चित्रां०—चित्रसेन ! मेरा जो नाम चित्रांगद है !

चित्र०—तो इसमें विचित्र क्या है ?

चित्रां०—उसका नाम चित्रांगद है ? सच कहते हो मित्र !

चित्र०—बिल्कुल ठीक कहता हूँ, जैसे मेरा नाम चित्रसेन निश्चित है वैसे ही उसका नाम चित्रांगद निश्चित है।

चित्रां०—उस पर चढ़ाई करो, आक्रमण करो।—सेनापति !

[सेनापतिका प्रवेश।]

चित्रां०—सेनापति ! हस्तिनापुरके राजाका नाम भी चित्रांगद है, उसे पकड़कर ले आओ।

चित्र०—किस लिए मित्र ?

चित्रां०—मैं देखूँगा कि उसकी कैसी सूरत है ?

चित्र०—क्यों ?

चित्रां०—केवल कौतूहल पूर्ण करनेके लिए ।

चित्र०—तुम क्या पागल हो चित्रांगद ?

चित्रां०—क्या कहा ?

चित्र०—तुम क्या पागल हो ?

चित्रां०—उसके बाद !

चित्र०—उसके बाद क्या !

चित्रां०—तुमने क्या नाम लेकर मुझे पुकारा ?

चित्र०—चित्रांगद कह कर, जो कि तुम्हारा नाम है ।

चित्रां०—उठो, आओ तुम्हें गलेसे लगा लूँ । (उठता है ।)

चित्र०—(चित्रांगदके गले लगाने पर) यह क्यों ?

चित्रां०—तुमने मुझे याद करा दिया कि मेरा नाम चित्रांगद है। बन्धुवर सुनो, पृथ्वीमण्डल भर पर मैं ही अकेला चित्रांगद हूँ । और कोई अगर यह नाम धारण करे तो वह चोरी है । उसके साथ मेरा विरोध है ।—सेनापति !

सेनापति—महाराज !

चित्रां०—हस्तिनापुरका राजा मेरा प्रधान शत्रु है। युद्धकी तैयारी कर दो ।

सेना—जो आज्ञा स्वामी ।　　　　(प्रस्थान ।)

चित्र०—चित्रांगद ! मित्र, तुम्हारा सिर फिर गया है ! जिसका नाम चित्रांगद है वही तुम्हारा शत्रु है ?

चित्रां०—अवश्य। वह अपना नाम मिटा दे—फिर मुझसे उससे कोई झगड़ा नहीं है। वह मेरा बन्धु है—परम मित्र है।—गाओ—इस संसारमें अकेला मैं ही चित्रांगद हूँ। प्रिय मित्र, मदिरासे प्याला भर दो। नाचो गाओ।

(सहेलियाँ नाचती—गाती हैं।)

गजल।

ढालो अमृत ढालो किशोरी चन्द्रवदनी सुन्दरी।
है जो तृषा आकुल अधीर उसे बुझाओ रसभरी॥
हर एक नसमें गर्म खून उमंगसे लहरा उठे।
ढालो अभी मदिरा, बना दो मस्त मुझको सुन्दरी॥
चौंरी डुलाओ त्यों सुगंधित शुभ वसन्ती वायुसे—
बस शान्तिसुख भर दो हृदयमें, सुघर सुरपुरकी परी॥
बाजें मृदंग सितार मुरली, ललित सारंगी बजे।
गाओ मधुर स्वरसे दिशायें, गूँज उट्ठें, किन्नरी॥
नाचो निराले हावभाव-दिखावसे, अनुरागसे—
मन्मथ-मथे मन और योंही वाण मारे सरसरी॥

(पर्दा गिरता है।)

पाँचवाँ दृश्य।

स्थान—व्यासका आश्रय।

समय—प्रातःकाल।

[व्यास और भीष्म।]

व्यास—‘सुख-सुख’ करता हुआ मनुष्य निरन्तर नित्य मारामारा फिरता है। वह खाने-पीनेमें, सोनेमें, सवारीमें, मान-सन्मानमें महामूल्य वस्त्रोंमें और अनेकानेक व्यसनोंमें उसे खोजता फिरता है—तो भी नहीं पाता। मगर वह सुख बहुत सहज, सरल, अनायास ही प्राप्य, अपने ही हाथमें है।

भीष्म—यह कैसे ?

व्यास—सुखकी विविध सामग्रियाँ मुझे नसीब नहीं हैं। लेकिन अपनी आवश्यकताओंको—अभावोंको—मैं आप अपने हाथों कम कर सकता हूँ। आमदनी न बढ़े, खर्चको तो कम कर सकता हूँ। लाभ सुलभ नहीं है, पर हानि तो सहज है। यह देखो, मेरी यह साधारण कुटी रहनेके लिए है, मृगछालाका आसन बिछानेके लिए है, वृक्षोंके बल्कल पहननेके लिए हैं, फल-मूल भोजनके लिए हैं, झरनोंका पानी पीनेके लिए हैं; धन-हीन सुख-सामग्री-हीन होने पर भी मुझे काहेकी कमी है ? अकिञ्चन ब्राह्मण होने पर भी मैं इस कुशोंकी कुटीरमें सम्राट् हूँ।

भीष्म—महर्षि, तुम सम्राटोंके भी सम्राट् हो। कुशकी कुटीमें बैठे बैठे सारे भारतका शासन कर रहे हो। इसीसे आज मैं हस्तिनापुरका वीर युवराज, परशुरामका शिष्य भीष्म, तुम्हारे ज्ञानके द्वार पर कृपाका भिक्षुक हूँ।

व्यास—तुम्हारी ज्ञानकी प्यास क्या मिटी नहीं देवव्रत ?

भीष्म—महोदय, ज्ञानकी प्यास क्या कभी मिटती है ?

व्यास—देवव्रत ! तुमने विष-पान किया है, औषध करो।

भीष्म—सो कैसे ऋषिवर ?

व्यास—ज्ञान-विचार करना क्षत्रियका धर्म नहीं है। युद्धका मैदान ही क्षत्रियकी कर्मभूमि है।—जाओ! चिन्तना मत करो—विचार मत करो। काम करो। सोचनेके लिए मैं हूँ। जाओ; घर लौट जाओ।

(प्रस्थान।)

[माधवका प्रवेश।]

भीष्म—एलो चाचा यहीं आगये। चाचा, चाचा !

(माधवकी ओर लपकते हैं।)

माधव—बेटा देवव्रत ? (गलेसे लगाता है) अभी जीते हो ?

भीष्म—चाचा मेरी मृत्यु मेरी इच्छाके बिना नहीं हो सकती। इसीसे मेरा मरण नहीं हुआ। मेरे भाई चित्रांगद और विचित्रवर्य तो कुशलसे हैं ?

माधव—चित्रांगद और विचित्रवीर्य अभीतक बचे हुए हैं, लेकिन लौटकर उन्हें देख पाऊँगा या नहीं, सन्देह है।

भीष्म—यह क्यों चाचा ?

माधव—गन्धर्वराज चित्रांगदने राज्य पर चढ़ाई की है। आओ देवव्रत, राज्यको लौट चलो।

भीष्म—यह कैसे हो सकता है चाचा ? हस्तिनापुरमें लौटकर जानेका मुझे अधिकार ही क्या है?—मुझे रानीने देशसे निकाल दिया है!

माधव—महारानी कौन होती है ? महाराज शान्तनुकी मौतके बाद राज्यके राजा तुम हो। आओ देवव्रत, चलो। राजदण्ड लो, सिंहासन पर अधिकार करो, और द्वितीय रामचन्द्रके समान साम्राज्यका पालन करो।

भीष्म—ना चाचा, मैंने जन्मभरके लिए राज्याधिकार छोड़ दिया है।

[व्यासका प्रवेश।]

व्यास—तो भी तुम क्षत्रिय हो। जाओ देवव्रत, राज्यकी रक्षा करो। आर्त्तोंका उद्धार करो। बैरियोंका दल जिस समय स्पर्द्धासे उद्धत होकर देशपर आक्रमण करने आ रहा है उस समय क्या क्षत्रियको आँखें मूँदकर सोना चाहिए ? जब क्षत्रिय अपने धर्मको छोड़ देंगे तब यह स्वर्णभूमि भारत रसातलको चला जायगा।

भीष्म—जो आज्ञा ऋषिवर ! चरणोंमें प्रणाम करता हूँ।

(प्रणाम करना।)

व्यास—तपस्वीके आशीर्वादसे तुम्हारे सब विघ्न दूर हों ! जाओ भीष्म !

(माधव और भीष्म कुछ दूर आगे बढ़ते हैं ।)

माधव—(आगे सहसा रुक कर) यह क्या देवव्रत ! यह क्या ?—यह क्या ? सारे आकाशमें घन-घोर मेघोंने फैलकर अन्धकार छा दिया है । बिजली चमक रही है । प्रबल आँधी चली आती है । बिजली रह रह कर कड़कती है ।

भीष्म—(दूर पर देखकर) यह क्या ! कुछ भी नहीं सूझता ।—ऋषिवर !

व्यास—डर नहीं है देवव्रत ! ब्राह्मणका काम ब्राह्मण करेगा !—मेघराशि उड़ जाय । आँधी थम जाय । अन्धकार दूर हो जाय ।

(फिर प्रकाश होता है ।)

भीष्म—(दूर पर देखकर) एक अलंध्य पर्वत हस्तिनापुरकी राह रोके खड़ा है ।

व्यास—अगर व्यासमें तपस्याका बल हो तो पर्वत चूर्ण हो जाय ।

(पर्वत चूर्ण हो जाता है)

व्यास—चले जाओ देवव्रत । कोई भय नहीं है । कोई बाधा नहीं है । (माधव और भीष्मका प्रस्थान ।)

[महादेव और पार्वतीका प्रवेश ।]

महादेव—पार्वती, तपस्याकी शक्ति देखी !—(आगे बढ़कर) वत्स व्यास !

व्यास—कौन हो तुम ?

महादेव—शंकर ।—मैं तुम पर प्रसन्न हूँ । ऋषिवर, जो चाहो, वर माँगो ।

व्यास—यही माँगता हूँ कि तपोबलसे मनुष्य-जातिका हित कर सकूँ। बस, यही प्रार्थना है।

महा०—तथास्तु। तुम्हारी कीर्ति अमर रहे।

(सबका प्रस्थान।)

छठा दृश्य।

स्थान—काशिराजका प्रमोदवन।

समय—तीसरा प्रहर।

[अम्बिका और अम्बालिका।]

गीत। ठुमरी पंजाबी ठेका।

उजले बादल उड़े जा रहे, संध्या-किरण-प्रभा-छबि-छाये।
जगशोभाकी विजयपताका, ज्यों उड़ती बहु रंग दिखाये॥
हम भी हिल-मिल चलो उड़ चलें, परिस्तानमें मौज मनाये।
मलय-पवनमें देह छोड़कर, नील गगनमें पर फैलाये।
देखो कैसे देख पड़ें नर, देखो कैसी भूमि सुहाये।
जीवन क्या केवल चिन्ता है? केवल नीरस काम चलाये॥
क्या होगा यह सोच साचकर, कर ले जीवन भोग भला ये।
नहीं तो जग है केवल मिट्टी, जीवन बच रहना कहलाये॥

अम्बिका—अच्छा गाना है।

अम्बालिका—बड़ा सुन्दर है!

अम्बि०—हम आप ही गीत बनाकर, आप ही गाकर—

अम्बालि०—आप ही मगन हैं!

अम्बि०—ऐसा बहुत कम देख पड़ता है; (गानेके स्वरसे) "उजले बादल उड़े जा रहे।"

अम्बालि०—(वैसे ही स्वरसे) "संध्या-किरण-प्रभा छबि-छाये।"

अम्बिका—मुझे कविताके भाव खूब सूझ पड़ते हैं।

अम्बालि०—और 'तुक' तो मेरी जीभ पर ही रक्खी रहती है। यहाँ 'छबि-छाये' की तुकका मिलना और साथ ही भावको बनाये रखना बहुत ही कठिन हो उठा था।

अम्बि०—हम दोनों बहनोंकी जोड़ी बहुत अच्छी मिली है।

अम्बालि०—दो रत्न हैं!

अम्बि०—लेकिन बड़ी दीदीका ढंग और ही है! न गीत ही गा सकती हैं—

अम्बालि०—और न कविताकी तुक ही मिला सकती हैं।

अम्बि०—सदा उदास रहती हैं।

अम्बालि०—अभीतक ब्याह नहीं हुआ है न! इसीसे!

अम्बि०—अच्छा दीदीने अभीतक ब्याह क्यों नहीं किया?

अम्बालि०—ठीक यही मैं भी सोच रही थी।

अम्बि०—बहन तू ब्याह करेगी?

अम्बालि०—करूँगी क्यों नहीं!

अम्बि०—जानती है, तेरा वर कैसा होगा?

अम्बालि०—तुम्हीं बताओ, कैसा होगा?

अम्बि०—जानती है, वर कैसा होगा?—ठहर, जरा आँखें मूँदकर तेरे वरका ध्यान कर दूँ। (बैठकर आँखें मूँदती है।)

अम्बालि०—मैं भी ध्यान करती हूँ। (वैसे ही बैठकर आँखें मूँदती है।)

अम्बि०—मै तेरे वरको देख रही हूँ।

अम्बालि०—देख रही है? अच्छा, कैसा है?

अम्बि०—बाएँ टेढ़ी माँग है,

अम्बालि०—लंबीसी है नाक।

अम्बि०—पूरा जैसे स्वाँग है,

अम्बालि०—बहती रहती नाक ॥
अम्बि०—कान होठ दोनों कटे,
अम्बालि०—बाल मैलकी खान ।
अम्बि०—दाँत बड़े बिरले फटे,
अम्बालि०—तनमें तनिक न तान ॥
अम्बि०—विद्या बुद्धि जरा नहीं,
अम्बालि०—मस्तक खाली खोल ।
अम्बि०—शेखी मारे सब कहीं,
अम्बालि०—भीतर पोला ढोल ॥
अम्बि०—मुँह जैसे सिल हो टँकी,
अम्बालि०—मधुके छत्ते कान ।
अम्बि०—आँखें पलकोंसे ढँकी,
अम्बालि०—बोली जैसे बान ॥
अम्बि०—अनुरागसे रीता रहे—
अम्बालि०—जीता रहे ! जीता रहे !
अम्बि०—नित भंग भी पीता रहे !—
अम्बालि०—जीता रहे ! जीता रहे !

अम्बि०—आहा, अगर हम दोनों सौतें होतीं !

अम्बा०—खूब होता । क्यों ?

अम्बि०—केवल परस्पर झगड़ा किया करतीं ।

अम्बालि०—और फिर मेल कर लेतीं ।

अम्बि०—ईश्वर करे, ऐसा ही हो ! हम सौते ही हों ।

अम्बालि०—जिससे जीवनभर हम दोनों अलग न हों ।

अम्बि०—(स्नेहके साथ) अम्बालिका !

अम्बालि०—(स्नेहके साथ) अम्बिका !

(गले लगकर एक दूसरेका मुँह चूमती हैं ।)

अम्बि०—ओ दीदी ! दीदी रे दीदी !

अम्बालि०—साथमें सुनन्दा भी है ।

अम्बि०—छिप रहो—छिप रहो ।

अम्बालि०—छिप रहो—छिप रहो । (दोनों आड़में हो जाती हैं ।)

[बातें करते करते अम्बा और उसकी सखी सुनन्दाका प्रवेश ।]

सुनन्दा—इसीके लिए रानीके साथ राजाका झगड़ा है । राजा जितना ही कहते हैं रानी उतना ही गरम पड़ती हैं, और रानी जितना कहती हैं, राजा भी उतना ही गरम पड़ते हैं ।

अम्बा—मैं अगर ब्याह नहीं करूँ तो इसमें हर्ज ही क्या है ?

सुनन्दा—तुम्हारा ब्याह हुए बिना दोनों छोटी बहनोंका ब्याह कैसे होगा ?—तुम तो समझती हो !—अब तुम इतनी नन्हीं नहीं हो ।

(अम्बा सोचती है ।)

सुनन्दा—दोनों छोटी बहनोंके ब्याहमें रुकावट बनकर, पिता-माताके लिए अशान्तिका कारण बनकर, संसारकी बोली-ठोलीका पात्र बनकर रहना क्या अच्छा है ?

अम्बा—संसारका बोली-ठोली कैसी ?

सुनन्दा—संसारके लोग तुमको देखकर कहेंगे, यह राजकन्या एक राजकुमारकी त्यागी हुई है । हस्तिनापुरका युवराज गर्व करेगा—" यह कामिनी मेरे ऊपर ऐसी रीझी हुई थी कि इसने मेरे सिवा और किसीसे ब्याह ही नहीं किया । "

अम्बा—(सोचकर) तुमने ठीक कहा सुनन्दा ।—जाओ, मातासे जाकर कहो—मैं ब्याह करूँगी ।

सुनन्दा—अब मैंने समझा, तुम बड़े बापकी लायक लड़की हो। मैं जाकर रानीजीसे कहती हूँ। (प्रस्थान।)

अम्बा—हाँ ब्याह करूँगी।—किससे?—यह सोचनेकी जरूरत क्या है! विष खाकर मरूँ, या जलमें डूबकर मरूँ—मरनेके ढंगमें अन्तर होनेसे क्या बनता-बिगड़ता है! मैं ब्याह करूँगी, और उससे ब्याह करूँगी, जिसे सबसे अधिक घृणाकी दृष्टिसे देखती हूँ। (प्रस्थान।)

(अंबिका और अम्बालिका दबे पैरों बाहर निकलती हैं।)

अम्बि०—सुना!

अम्बालि०—(जाती हुई अम्बाकी ओर उँगली उठाकर) हुश्!

अम्बि०—दीदी तो गई।

अम्बालि०—फिर लौट पड़ी थी—अब गई।

अम्बि०—मैंने कहा था न?

अम्बालि०—बिल्कुल ठीक कहा था।

अम्बि०—दीदी ब्याह करेगी!

अम्बालि—वही तो।

अम्बि०—पर क्यों करेगी, यह समझमें नहीं आया।

अम्बालि०—कुछ भी नहीं!

(अंबिका गीत गुनगुनाती हुई टहलतीहै और अम्बालिका उसका अन्तरा अलापती है।)

अम्बि०—(एकाएक थमककर) अच्छा औरतें ब्याह क्यों करती हैं?

अम्बालि०—और इन दाढ़ी-मूछोंवाले मर्दोंसे!

अम्बि०—हम ब्याह नहीं करेंगी, क्यों बहन!

अम्बालि०—अच्छी बात है! (दोनों गाती हैं।)

मलय पवनमें हिलमिल उड़कर, परिस्तानको जावेंगी ।
केवल फूलोंका मीठा मधु, पीकर मौज मनावेंगी ॥
शयन केतकी-सुवाससंचित रच, उस पर सो जावेंगी ।
चारु चन्द्रमाकी किरणोंमें, सुखसे खूब नहावेंगी ॥
कविता व्यजन डुलावेगी और प्रेम दिखावेगा सपने ।
परी सहचरी होगी, देंगे देव हृदय, हम पावेंगी ॥
सन्ध्या मेघ-दुकूल, इन्द्रधनु चन्द्रहारसा पहनेंगी ।
करनफूल तारोंके होंगे, तम चादर दरसावेंगी ॥
भाप साथ नभ चढ़ें, बूँदसँग धरती पर फिर आवेंगी ।
नदियों सँग सागर जावेंगी, आँधीके संग गावेंगी ॥

सातवाँ दृश्य ।

स्थान—युद्धका मैदान ।

समय—दिन ।

[युद्ध करनेके लिए उद्यत हस्तिनापुरके महाराज चित्रांगद और गन्धर्वराज चित्रांगद तरवार खींचे खड़े हैं ।]

गन्धर्व—माताका दूध छोड़कर, छोटे बच्चे, तुम युद्धभूमिमें क्यों आये हो ? हथियार रख दो, मैं तुम्हें जानसे नहीं मारूँगा । सिर्फ अपने रथकी चोटी पर जंजीरसे बाँधकर अपने विजय-गौरवके समान अपने नगरको ले जाऊँगा ।

कुमार चित्रां०—मेरी सब सेना नष्ट हो गई है, तो भी मैं प्राण रहते कभी हथियार नहीं रक्खूँगा । हार नहीं मानूँगा । माताके आशीर्वादसे इस युद्धमें मैं अमर हूँ । उन्होंने मेरे मस्तक पर अपने चरणोंका रज लगाकर कहा है—" मैं अगर सती हूँ तो बेटा चित्रांगद, तुम युद्धमें जय पाकर लौट आओगे । " वे आशीर्वादके वाक्य अभीतक मेरे कानोंमें गूँज रहे हैं ।

गन्धर्व०—तो फिर मैं क्या करूँ । करो, युद्ध करो । शस्त्र हाथमें लो । अपनेको बचाओ ।

(दोनों लड़ते हैं । कुमार चित्रांगद चोट खाकर गिर जाते हैं ।)

गन्धर्व०—जय प्राप्त कर चुका । अब विजयगर्वके साथ हस्तिनापुरमें प्रवेश करूँगा ।—सेनापति ! सेनापति ! (प्रस्थान ।)

[माधवके साथ भीष्मका प्रवेश ।]

माधव—कुमार इस जगह हैं वत्स ! जो सोचा था वही हुआ। वह देखो, चित्रांगद पृथ्वी पर पड़े हुए हैं—

भीष्म—(आग्रहके साथ) जीते हैं या मर गये ?

माधव—(देखकर) मर गये ! मिट्टीके ढेलेके समान अचल पड़े हैं । –शरीर बर्फसा ठंड़ा पड़ गया है—साँस भी नहीं चलती ।—कुमार ! चित्रांगद !

भीष्म—(भर्राई हुई आवाजमें) चाचा ! यह शोक करनेकी जगह नहीं है ।

[गंधर्वराजका फिर प्रवेश ।]

भीष्म—तुम्ही क्या गन्धर्वराज वीर चित्रांगद हो ?

गन्धर्व०—हाँ तुम कौन हो ?

भीष्म—मैं भीष्म हूँ !

गन्धर्व०—नाम मैंने सुना है ।

भीष्म—गन्धर्वराज, यह बालककी हत्या किस लिए की है ?

गन्धर्व०—हत्या नहीं की है, इसे युद्धमें मारा है ।

भीष्म—युद्ध ? इसे युद्ध कहते हैं ? दुधमुँहे बच्चेको मारकर यह डींग मारना क्या तुम्हें सोहता है गन्धर्वराज ! मनुष्यसे तुम गन्धर्व श्रेष्ठ हो। यह दुर्बलों पर अत्याचार, जबरदस्ती स्वाधीनता छीनना, यह

शान्तिभंग करना और यह दर्प दिखाना क्या गन्धर्वोंके ईश्वरको सोहता है ?—कहो किस लिए तुमने यह युद्ध ठाना है ?

गन्धर्व०—दिग्विजय करनेके लिए निकला हूँ । इसी कारण यह युद्ध ठाना है ।

भीष्म—यह युद्ध नहीं, दस्युओंका रोजगार है !

गन्धर्व०—गन्धर्व लोग हीन मनुष्यजातिसे कभी बातचीत नही करते ।

भीष्म—अच्छा । पर हत्या करते हैं ! अब तुम अपने राज्यको लौट जाओ गन्धर्वराज ।

गन्धर्व०—रे मनुष्य,उसके पहले हस्तिनापुरके राजासिंहासन पर अधिकार करूँगा । सुना है, शान्तनुकी रानी अनन्तयौवना है । देखूँगा कैसी है वह । देखूँ अगर—

भीष्म—सावधान ! सम्राज्ञीके लिए अगर कोई अपमानका शब्द कहा तो संसारसे तुम्हारा नाम उठ जायगा—सिर धड़से अलग होकर दमभरमें धरती पर लोटने लगेगा ।

गन्धर्व०—उद्धत युवक, हस्तिनापुरकी राह छोड़ दे ।

भीष्म—हस्तिनापुरमें घुसनेका तुम्हें अधिकार नहीं है ।

गन्धर्व०—मेरी राह कौन रोकेगा ?

भीष्म—मैं भीष्म ।

गन्धर्व०—हट जाओ, हस्तिनापुरकी राह छोड़ो ।

भीष्म—कुशलसे अपने राज्यको लौट जाओ, कहता हूँ ।भीष्मके जीते रहते शत्रु हस्तिनापुरमें पैर नहीं रख सकता ।

गन्धर्व०—तो युद्ध करो ।

भीष्म—युद्ध, किससे ? (बलपूर्वक गन्धर्वराजका हाथ उमेठकर तरवार छीन लेते और फेंक देते हैं ।)

भीष्म—जाओ, अपने राज्यको लौट जाओ । और मैं कहता हूँ, सो सुनो ।—दुर्बलके ऊपर कभी अत्याचार न करना । घमंड मत करना । चाहे जितने बड़े तुम हो, याद रक्खो, तुमसे भी बड़े इस संसारमें हैं । अगर न भी हों, तो प्रकृति तुम्हारे किये हुए स्वेछाचार अत्याचारको नहीं सहेगी । तुम भी इस ब्रह्माण्डके नियमके दास हो ।

(गन्धर्वराज चित्रांगदका प्रस्थान ।)

भीष्म—महर्षि व्यास, तुमने ठीक कहा—" क्षत्रियका धर्म युद्ध है—शास्त्रचर्चा नहीं । मैं मूढ़ हूँ । अभिमानमें पड़कर क्षत्रियका धर्म छोड़कर मैंने ही यह सर्वनाश किया !—स्वर्गके देवगण, क्षमा करना ।

माधव—चित्रांगद ! चित्रांगद ! रुधिरसे भीगे हुए मुँह फिराये इस धूल पर क्यों पड़े हुए हो ?—वत्स !—प्राणाधिक !—

भीष्म—ना, तू क्षत्रियका बालक है ! तुझे यही सोहता है !—देशके लिए जीवन और देशके हितके लिए मृत्यु—यही तो क्षत्रियका वीरका, कर्त्तव्य है—धर्म है ! यही तुझे सोहता है ! मैं अन्त समय ऐसी ही सेज पाऊँ—ऐसे ही सो जाऊँ ।—खुले हुए नील आकाशके नीचे युद्धभूमिमें ऐसी ही अन्तिम शय्या बिछी हो, सामने मरणका रक्तसागर उमड़ रहा हो, उसका शब्द सुन पड़ रहा हो और चारों ओर समरका कोलाहल मचा हो ।

(पर्दा गिरता है ।)
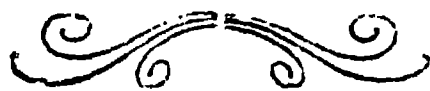
तीसरा अङ्क ।
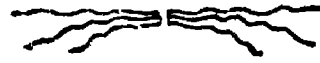
पहला दृश्य ।

स्थान—गंगातट पर काशिराजका प्रमोदवन ।

समय—सन्ध्यासे कुछ पहले ।

[हथियारबंद भीष्म अकेले खड़े हैं ।]

भीष्म—यह वही कुंजवन है; वही दूर तक बहनेवाली, हिल्लोल-कल्लोलमयी, पवित्र प्रवाहवाली गंगा है । वही शान्त सन्ध्या है; वैसे ही धीरे धीरे मंद मृदु स्निग्ध सुगन्धपूर्ण पवन डोल रहा है । ठीक इसी जगह, इसी सन्ध्याके समय, इसी बरगदके तले !—वह दिन और आजका दिन ! बीचमें बीस वर्षका अन्तर पड़ गया है ! इस वृक्षके नीचे गंगातट पर जरा बैठकर विश्राम कर लूँ । (प्रस्थान ।)

[माधवका प्रवेश ।]

माधव—देवव्रत जबसे यहाँ आये हैं तबसे इतने उदास—इतने कातर क्यों हैं ! मुझसे भी बात नहीं करते । क्यों ? कौन जाने !—वह लो, पेड़की डालमें तरवार टाँगकर जमीन पर लेटे हुए एकटक उस ओर ताक रहे हैं ।—ना ! उन्हें अकेले न रहने दूँगा । (प्रस्थान ।)

[अम्बिका और अम्बालिकाका प्रवेश ।]

अम्बि०—ढंग कुछ ऐसे देख पड़ते हैं कि ये लोग अखीरको हम लोगोंका ब्याह किये बिना नहीं छोड़ेंगे !

अम्बालि०—हम लोगोंका ब्याह किये बिना जैसे इन लोगोंको नींद ही नहीं आती ।

अम्बि०—और हम लोगोंकी भी अब इसमें कोई आपत्ति नहीं है। क्यों बहन ?

अम्बालि०—हाँ। अब हम लोगोंकी अवस्था भी ब्याहने योग्य हो गई है।

अम्बि०—सो—हो तो गई ही है।

अम्बालि०—इसीको स्वयंवरा कहते हैं!

अम्बि०—आप ही वर चुन लेना होता है न, इसीसे स्वयंवरा कहते हैं!

अम्बालि०—मैया रे!

अम्बि०—क्या होगा!

अम्बालि०—सब राजा लोग आये हैं ?

अम्बि०—कभीके आगये हैं!—वे केवल रात बीतनेकी राह देख रहे हैं।

अम्बालि०—जान पड़ता है,इस रातको उन्हें नींद ही नहीं आवेगी।

अम्बि०—केवल मुँह बाये पूर्वकी ओर ताकते रहेंगे!

अम्बालि०—अच्छा, इसी समय बड़ी दीदी भी स्वयंवरा होंगी ?

अम्बि०—क्यों—होंगी क्यों नहीं!

अम्बालि०—लेकिन उनकी अवस्था बहुत हो गई है।

अम्बि०—अवस्था बहुत होनेसे क्या होता है—देखनेसे तो उतनी उमर नहीं जान पड़ती।

अम्बालि०—बल्कि हम लोगोंसे छोटी जान पड़ती हैं।

अम्बि०—बिलकुल एकहरा डील है न!

अम्बालि०—लेकिन यह निश्चय है कि पिताजी दीदीको उनकी उमर छुपाकर ब्याहे देते हैं।

अम्बि०—देने दो। तेरा उसमें क्या!–तूने इनमेंसे किसी राजाको देखा है?

अम्बालि०—एलो! देखा क्यों नहीं।

अम्बि०—भला कोई तुझे पसंद आया है?

अम्बालि०—आया क्यों नहीं!

अम्बि०–कौन आया है?

अम्बालि०—सुनेगी? (कानमें कुछ कहती है।)

अम्बि०—दूर बेहया!

अम्बालि०—दुर कलमुही! (दोनों जोरसे हँसती हैं।)

अम्बि०—अरे वह दीदी है, दीदी!—

अम्बालि०—दीदी!

अम्बि०—अभी हम लोगोंको नहीं देखा है।

अम्बालि०—आप-ही-आप कुछ बक रही है।

अम्बि०—चुप।

अम्बालि०—हुश्‌ (दोनों छिप रहती हैं।)

[चिन्तित भावसे अम्बाका प्रवेश।]

अम्बा—रंग बिरंगी पताकाओंसे पुरी सुशोभित हो रही है। फाटकके ऊपर शहनाईकी रागिनी आनन्दकी मधुर वर्षा कर रही है। मांगलिक बाजोंका शब्द गली गली गूँज रहा है।—लेकिन जान पड़ता है, वह पीत पताका मेरे रक्तसे रँगी हुई है, और यह फाटककी ऊँची अंटिया पर शहनाई नहीं, मेरे बलिदानका बाजा बाज रहा है।—कलेजा धड़क रहा है। बारबार दाहिनी आँख फड़क रही है।—इस कुंजवनमें कौन है?—(हँसकर) अम्बिका और अम्बिका हैं! दोनों दो कबूतरियोंकी तरह बेखटके खेल रही हैं। (प्रस्थान।)

[अंबिका और अंबालिका निकल आती हैं ।]

अम्बिं०—सुना ?

अम्बालि०—क्या ?

अम्बि०—दीदी हमें कबूतरी बना गई ?

अम्बालि०—बना गई, अच्छा किया ।

(अंबालिका गाने लगती है । अम्बिका भी उसका साथ देती है ।)

लावनी ।

जो न विश्वमें विश्वव्यापी हार्दिक प्रेम प्रकट होता ।
जन्म वृथा था, तो जीवन भी मरुकी भूमि बिकट होता ॥
कुंजोंमें, वृक्षोंमें, देखो हरेक लतामें पत्तोंमें ।
एक प्रकृति बहु रंग दिखाती फूलोंके इन छत्तोंमें ॥
विविध गन्ध फैलाता अनुपम प्रेम यहाँ पर खिला हुआ ।
देख पड़े बस यही, हृदय है सबका सबसे मिला हुआ ॥
जो न विश्वमें विश्वव्यापी० ॥ १ ॥
वह है केवल चिन्ता करना, जोड़-हिसाब लगाना बस ।
अंक खींचना, रुपये गिनना, दिनभर जान खपाना बस ॥
यह है आँखें मूँद मजेसे मनमें होकर खूब मगन ।
लिये सहारा तकियेका यों बंसी सुनना, लगा लगन ॥
जो न विश्वमें विश्वव्यापी० ॥ २ ॥
वह है सबसे केवल रूखे सूखे तर्कोंका करना ।
यह है केवल गले लगाना, आशिक होकरके मरना ॥
दिलमें देना जगह, हृदयमें रखना, चखना रुचिका रस ॥
प्रेम दृष्टिसे देखा करना, हँसना–केवल हँसना बस ॥
जो न विश्वमें विश्वव्यापी० ॥ ३ ॥
केवल तुष्ट पुष्ट वह करता—भूखलगे खाना पाना ।
यह है केवल आँख मूँदकर मधुरस पीना मनमाना ॥
धूल और काँटोंमें केवल वह दौड़ाना. पीड़ा है ।
खाना हवा चाँदनीमें यह नौका पर जलक्रीड़ा है ॥
जो न विश्वमें विश्वव्यापी० ॥ ४ ॥

अम्बि०—अरे यह कौन है ?

अम्बालि०—हाँ बहन, यह कौन है ?

अम्बि०—इसने सब मिट्टी कर दिया ।

अम्बालि०—ए: ।

अम्बि०—अबकी नहीं भागेंगे ।

अम्बालि०—ना ! अबकी आफतका सामना करेंगे ।

अम्बि०—चुप ।

अम्बालि०—चुप !

[चिन्तितभावसे भीष्मका प्रवेश ।]

अम्बि०—किसी तरफ नहीं देखता ।

अम्बालि०—कुछ सोच रहा है ।

अम्बि०—जान पड़ता है, प्रेमके फंदेमें पड़ा हुआ है ।

अम्बालि०—पूछ लिया जाय !

अम्बि०—(आगे बढ़कर) मैं कहती हूँ (खाँसना)—मैं कहती हूँ—महाशय !

(अम्बालिका आगे बढ़कर खाँसती है । भीष्म चौंककर ठहर जाते हैं ।)

अंबि०—आप कौन हैं ?

अम्बालि०—कौन वर्ण हैं ?

अम्बि०—कौन जाति हैं ?

अम्बालि०—देवता हैं ?

अम्बि०—या दैत्य ?

अम्बालि०—या गन्धर्व ?

अम्बि०—या किन्नर ?

अम्बालि०—या यक्ष ?

अंबि०—या राक्षस ?

अंबा०—या—

भीष्म—(डरे हुए भावसे) मैं—मैं—

अंबि०—ओः ! आप हैं ?—आदमी पहलेहीसे कह देता है।

अंबालि०—आपको बताना नहीं पड़ेगा, पहचान लिया।—सो आप यहाँ ?

अंबि०—इस समय ?

अंबालि०—क्या सोचकर ?

भीष्म०—जी। मैं—सो—

अंबि०—ना, इस तरह बननेसे काम नहीं चलेगा।

अंबालि०—हम इन बातोंको पसंद नहीं करतीं।

अंबि०—पहले आप यह बताइए, यहाँ आप कुछ सोचकर आये हैं ?—

अंबालि०—या राह भूलकर चले आये हैं ?

अंबि०—प्रश्न यही है।

अंबालि०—सीधी बात है।

भीष्म—मेरा यहाँ—

अम्बि०—पहले मेरी बातका जवाब दीजिए।

अम्बालि०—ना, पहले मेरी बातका जवाब दीजिए !

अम्बि०—(बनावटी क्रोधसे) अंबालिका !

अंबालि०—(वैसे ही भावसे) अम्बिका !

भीष्म—मैं—मैं जानता नहीं था कि—

अंबि०—यह खूब संभव है। न जानना ही बहुत संभव है।

भीष्म—मैंने सोचा था कि—

अंबालि०—सो सोचा तो होगा ही !

अम्बि०—सो अच्छा ! आप जब जानते नहीं थे कि—

अंबालि०—आपने सोचा था कि—

अम्बि०—तब तो कुछ कहना ही नहीं है ।

अंबालि०—मामला ही खतम हो गया ।

अम्बि०—अब प्रश्न यह है कि आप—

अंबालि०—हैं कौन ?—यही प्रश्न है ।

भीष्म—मैं हस्तिना—

अम्बि०—किसने कहा कि आप हस्ती (हाथी) हैं ?

अंबालि०—आप हस्ती नहीं हैं, या अश्व नहीं हैं, प्रश्न यह नहीं है ।

अम्बि०—प्रश्न तो यह है कि आप हैं कौन ?

अंबालि०—सीधी बात है ।

भीष्म—मैं—

अम्बि०—सोच-समझ कर जवाब देना ।

अंबालि०—संक्षेपमें ।

भीष्म—मैं भीष्म —

दोनों बालिकायें—ओ बाबा ! (पीछे हटती है ।)

अम्बि०—आप—आप—आप हैं—

अंबालि—भीष्म । बेशक अचरजकी बात है ।

भीष्म०—इसमें तुमने अचरज क्या देखा ?

अम्बि०—अचरज नहीं है ?

अंबालि०—ओ बाबा !

भीष्म—अब तुम बताओ, कि तुम कौन हो ?

अम्बि०—हम ?—हम कौन है ?—एलो ! (जोरसे हँसती है।)

अंबालि०—हम ? ओ बहन ! (जोरसे हँसती है ।)

अम्बि०—हम—हम हैं ।

अंबालि०—बस !

भीष्म—तुम काशीनरेशकी कन्या हो ?

अंबि०—अरे पहचान लिया रे—पहचान लिया !

अंबालि०—ठीक जान लिया !

अंबि०—महाशय भीष्म ! आपने कैसे जाना कि—

अंबालि०—हम काशीनरेशकी कन्या हैं ?

अंबि०—क्या देखनेसे जान पड़ता है ?

अंबालि०—मत्थे पर लिखा है ?

अंबि०—सो जब जान ही लिया तब स्वीकार कर लेना ही अच्छा है ।

अंबालि०—बेशक !

अंबि०—हाँ महाशय—

अंबालि०—हम काशीनरेशकी कन्या हैं । ये बड़ी हैं—

अंबि०—और ये छोटी हैं ।

अंबालि०—" उमर बड़ी होती नहीं, बड़ा जगतमें ज्ञान । "

भीष्म—तुम उनकी बहनें हो ?

अंबि०—' उनकी ' ? किनकी ?

अंबालि०—इस ' उनकी ' के भीतर ' वे ' कौन हैं ?

भीष्म—अर्थात्—

अंबि०—' अर्थात् ' की जरूरत नहीं है । ' वे ' कौन हैं ?

अंबालि०—अभीतक नहीं समझी ?

अंबि०—ओ समझ गई।

अंबालि०—महाशय, अब आपके कहनेकी जरूरत नहीं है।

अंबि०—आप जब (इशारेसे)

अंबालि०—और वे जब (इशारेसे)

अंबि०—ओ! यह अच्छा जोड़ मिलेगा।

अंबालि०—मालूम भी खूब अच्छा होगा।

अंबि०—लेकिन आपका चेहरा—

अंबालि०—देखें।

अम्बि०—वही तो—

अंबालि०—यह तो आपने बड़े भारी खटकेमें डाल दिया।

भीष्म—क्यों?

अम्बि०—आप हैं भीष्म।

अंबालि०—यही नाम बताया है न?

भीष्म—हाँ देवी।

अम्बि०—वही तो।

अंबालि०—हूँ! तब तो चिन्तामें डाल दिया।

भीष्म०—क्यों?

अम्बि०—आपका चेहरा तो भीष्म ऐसा नहीं है।

अंबा०—बिलकुल ही नहीं।

भीष्म—तुमने पहले क्या कभी उन (भीष्म) को देखा है?

अंबि०—ना। लेकिन चेहरा देखकर जान पड़ता है, आपका नाम चन्द्रकान्त है।

अंबालि०—या ऐसा ही कुछ और होगा।

भीष्म—क्यों?

अंबि०—सो तो नहीं जानती, लेकिन—

अंबालि०—ऐसा ही मालूम पड़ता है।

अंबि०—आपका चेहरा—कुछ गंभीर अवश्य है।

अंबालि०—लेकिन भीष्म (भयानक) नहीं है।

अंबि०—ऐसे चेहरेके साथ मैं तो कभी ब्याह न करती।

अंबालि०—और नाम भी जरा नीरस है।

अंबि०—तो फिर महाशय भीष्म ! हम जाती हैं।

अंबालि०—हम लोगोंका ब्याह है न ! हाथमें बहुतसे काम ले रक्खे हैं ! (दोनों जाना चाहती हैं।)

अंबि०—(फिरकर) महाशय, कुछ खयाल न करना।

अंबालि०—(फिरकर) पसंद नहीं आये, क्या करें।

अंबि०—लेकिन दीदीके साथ—

अंबालि०—हो, तो अच्छा। जोड़ी मिल जायगी।

(दोनोंका हँसते हँसते प्रस्थान।)

भीष्म—दोनों बालिकायें सुन्दरी और आनन्दमयी हैं। जैसे दो नदियोंका निर्जन संगम हो।—कोई काम नहीं है, केवल हँसना और गाना; हृदयस्थलमें केवल निर्मल नीलिमा क्रीड़ा करती है, और केवल उसीका अवारित संगीतमुखर स्वच्छ उच्छ्वासपूर्ण जल तट-भूमिमें आकर लगता है। दोनों किशोर और सुन्दर चम्पेकी कलियाँ अपनी ही सुवासमें मस्त हो रही हैं, और कोई काम नहीं है, उषाके प्रकाशमें धीमी हवाके झोकोंसे नित्य परस्पर एक दूसरेके शरीर पर गिर गिर पड़ती हैं। जैसे एक शान्त पहाड़ी झरनेके झरनेकी मधुर ध्वनि और दूसरी उसकी प्रतिध्वनि हो। वह काहेका शब्द है ?

[दस सशस्त्र सिपाहियोंके साथ शाल्वका प्रवेश ।]

शाल्व—खबर ठीक थी !—यही भीष्म है ! सिपाहियो ! झपट कर पकड़ लो ।

भीष्म—(आश्चर्यके साथ) कौन ! सौभराज ?

शाल्व—आगे बढ़ो । स्वाँगकी तरह सबके सब खड़े क्या हो ?—आक्रमण करो, देखते नहीं हो इस समय वीर शस्त्रहीन है ?

भीष्म—यह क्यों सौभराज ?

शाल्व—यह हस्तिनापुरका महल नहीं है भीष्म । यह खुला हुआ मैदान है । यहाँ तुम्हारे बलकी परीक्षा होगी ।

भीष्म—ओ समझ गया । अच्छी बात है । (तरवार खींचना चाहते हैं) यह क्या !—ए लो ! तरवार तो वहीं छोड़ आया !

शाल्व—पकड़ लो—बाँध लो

(भीष्म पर सिपाही आक्रमण करते हैं । भीष्म हाथोंसे युद्ध करते करते दो चार सिपाहियोंको गिराकर स्वयं धरती पर गिर पड़ते हैं ।)

शाल्व—बाँध लो ।   (सिपाही भीष्मको बाँधते हैं ।)

शाल्व—बस अब क्या देखते हो ! मार डालो ।—लेकिन उससे पहले, भीष्म, हस्तिनापुरके अपमानका यह बदला है—देखो ।

(लात मारता है ।)

भीष्म—मेरी तरवार ! मेरी तरवार !

शाल्व—यह लो, देता हूँ ।   (फिर लात मारता है ।)

[तरवार लिये माधवका प्रवेश ।]

माधव—यह क्या, देवव्रत धरती पर पड़े हैं,—चारों ओर सिपाही हैं ! पास ही सौभराज शाल्व खड़ा है ! मामला क्या है ?

शाल्व—दूर खड़ा हो ब्राह्मण !

भीष्म—तरवार ! चाचा, मेरी तरवार—जरा मुझे दे दो ।—

शाल्व—(सिपाहियोंसे) मारो। जल्द मारो।

(सिपाही भीष्म पर भाले चलाना चाहते हैं।)

माधव—एक निहत्थे वीरकी हत्या करनेके पहले ब्रह्म-हत्या कर लो।

(भीष्मको अपने शरीरसे ढक लेता है।)

[सैनिकसहित धीवरराजका प्रवेश।]

धीवर०—किसकी मजाल है! (शाल्वके सिपाहियोंके सामने बर्छे तानकर खड़ा हो जाता है।)

शाल्व—मारो—मारो—अभी, इसी घड़ी—

धीवर०—मेरे खड़े रहते!—(भीष्मसे) कुछ डर नहीं है भैया। —(अपने साथियोंसे) लठैत भाइयो!

शाल्व—तुम कौन हो?

धीवर०—मैं धीवरोंका राजा हूँ।

शाल्व—धीवरोंका चौधरी?

धीवर०—हाँ मैं धीवरोंका चौधरी ही हूँ! लेकिन धीवरोंका चौधरी भी इतना जानता है कि जिसके हाथमें हथियार नहीं है उस पर हथियार नहीं चलाना चाहिए।

माधव—शाबास धीवरराज!

शाल्व—हट जाओ।

धीवर०—कभी नहीं। जान दे दूँगा, मगर अपने जीते जी कुमारके ऊपर वार न करने दूँगा।—(अपने साथियोंसे) लाठीवालो, पाँत बाँधकर खड़े तो हो जाओ भाइयो! जरा देखूँ तो यह कैसा छत्री है!

(तरवार घुमाता है।)

(इधर मौका पाकर माधव भीष्मके बंधन काट डालते हैं। भीष्म छूटकर और तरवार लेकर खड़े हो जाते हैं।)

भीष्म—अब इसकी जरूरत नहीं है। आओ सौभराज—

(शाल्व अपने सिपाहियोंके साथ भागना चाहता है ।)

धीवर०—यह नहीं हो सकता बच्चा !

(अपने साथियोंके साथ धीवरराज शाल्वकी राह रोककर खड़ा हो जाता है ।)

भीष्म—युद्ध कर—क्षत्रियकुलकलंक !

शाल्व—(भीष्मके पैरों पर तरवार रखकर, हाथ जोड़कर, घुटने टेक कर) क्षमा करो भीष्म !

धीवर०—(लात मारकर शाल्वको धरतीपर गिराकर उसकी छाती पर बैठ जाता है) ले क्षमा करता हूँ !—बर्छा भोंक दूँ ! (बर्छा उठाता है ।)

(शाल्व प्रार्थनापूर्ण दृष्टिसे भीष्मकी ओर देखता है ।)

भीष्म—छोड़ दो ! (शाल्वसे) अपनी तरवार लो महाराज !

(शाल्वकी तरवार उसे दे देते हैं ।)

धीवर०—अच्छा, कुमार कहते हैं इससे छोड़े देता हूँ । लेकिन इस धीवरोंके चौधरीको याद रखना छत्री महाराज !

(शाल्व उठकर जाना चाहता है ।)

भीष्म—ठहरो सौभराज !　　　　(शाल्व खड़ा हो जाता है ।)

भीष्म—सुनो सौभराज ! निहत्थे बन्दीकी हत्या करना क्षत्रियका धर्म नहीं है ! याद रखना । यहाँ तक कि जो लात मारे, वह भी यदि क्षमा माँगे तो उस लात मारनेका भी बदला लेनेकी जरूरत नहीं होती !—जाओ ।　　　　(अपने सिपाहियों सहित शाल्वका प्रस्थान !)

माधव—मामला क्या था देवव्रत !

भीष्म—ये भी क्षत्रिय हैं !

धीवर०—छोड़ दिया भैया ?

भीष्म—धीवरराज ! तुम साहसी पुरुष हो ।

धीवर०—खुले मैदानमें यदि निकल पाऊँ तो फिर मैं किसीको नहीं डरता !—सिर्फ घरमें अपनी घरवालीको डरता हूँ ।

भीष्म—क्षत्रिय इस तरहके होते हैं।—परशुरामने क्या यों ही—अब इस बातको जाने दो　　(प्रस्थान।)

(माधव और धीवरराज साथ साथ चलते हैं।)

माधव—तुम यहाँ कैसे आये !

धीवर०—ब्याह करने।

माधव—क्यों ! तुम्हारी स्त्री ?

धीवर०—बहुत ही झगड़ा करती है।　　(प्रस्थान।)

दूसरा दृश्य।

स्थान—काशीनरेशका महल।

समय—प्रातःकाल।

[काशीनरेश और राजकुमार।]

काशी०—कैसा आश्चर्य है ! रातको मेरे प्रमोदवनमें—

राजकु०—वे लाशें सौभराज शाल्वके आदमियोंकी हैं; इसका प्रमाण पाया गाया है।

काशी०—लेकिन उन मृत शरीरों पर हथियारका कोई निशान नहीं है ?

राजकु०—नहीं पिताजी !

काशी०—कल शामको बागमें अंबिका और अंबालिकासे भीष्मकी भेट हुई थी ?

राजकु०—हाँ हुई थी।

काशी०—यही तो सन्देहकी बात है !—लेकिन भीष्म यह काम करेंगे ! मतलब क्या है ? कुछ समझमें नहीं आता। अच्छा जाओ, जाकर स्वयंवरकी तैयारी करो।　　(राजकुमारका प्रस्थान)

काशी०—चिन्ताकी बात है ! ठीक ब्याहके पहले—

[माधवका प्रवेश ।]

माधव०—आप काशीनरेश हैं !

काशी०—ब्राह्मण !—(प्रणाम करके) मैंने आपको नहीं पहचाना !

माधव—मैं पहले स्वर्गवासी महाराज शान्तनुका सखा था। इस समय उनके पुत्रोंका अभिभावक हूँ ।—हस्तिनापुरके युवराज देवव्रत भीष्मने हस्तिनापुरके महाराज विचित्रवीर्यके लिए आपकी दोनों छोटी कन्याओंको माँगने मुझे आपके पास भेजा है ।

काशी०—यह क्या ब्राह्मण ! यह तो स्वयंवरसभा है !

माधव—तो महाराजको प्रार्थना अस्वीकार है ?

काशी०—निश्चय !

माधव—मैंने भी यही सोचा था !—जय हो ! (प्रस्थान ।)

काशी०—यह क्या ढंग है !

[सुनन्दाका प्रवेश।]

सुनन्दा—महाराजको रानी साहबा जरा भीतर बुला रही हैं ।

काशी०—क्यों !

सुनन्दा—बड़ी कुमारी बहुत रो रही हैं ।

काशी०—रो रही है ?—क्यों ?

सुनन्दा—मालूम नहीं ।

काशी०—मैं आता हूँ, तुम चलो ।

(सुनन्दाका प्रस्थान ।)

काशी०—ये सब बातें निश्चय ही किसी होनहार अनिष्टकी सूचना कर रही हैं ।—कुछ समझमें नहीं आता क्या होगा ! (प्रस्थान ।)

तीसरा दृश्य ।

स्थान—काशी, स्वयंवर सभा ।

समय—प्रातःकाल

[क्षत्रिय राजालोग और मन्त्रीसहित धीवरराज बैठा है । पास ही काशिराजपुत्र और भाट बगैरह खड़े हैं ।]

शाल्व—काशीराज कहाँ हैं ?

राजकुमार—वे कन्याओंको लिये आरहे हैं ।

१ राजा—(धीवरराजकी ओर इशारा करके) यह कौन है ?

राजकु०—हाँ यह कौन है ?—तुम कौन हो जी ?

धीवर०—मैं धीवरराज हूँ ।

राजकु०—क्यों भाई !—तुम यहाँ किस लिए आये हो ?

धीवर०—मैं भी एक स्त्रीका उम्मेदवार हूँ ।

राजकु०—उम्मेदवार कैसे ?

धीवर०—मैं ब्याह करूँगा ।

राजकु०—तुम ? तुम कौन जाति हो ?

धीवर०—धीवर ।

राजकु०—मल्लाह ?

धीवर०—नहीं, धीवर ।

राजकु०—मैं पूछता हूँ, तुम्हारा रोजगार तो मछली पकड़ना ही है ?

धीवर०—अच्छा समझ लो कि यही है, तो क्या बुरा है ? दामाद फँसानेकी अपेक्षा तो मछली पकड़ना हजार दर्जे अच्छा है ।

राजकु०—दामाद फँसाना कैसा ?

धीवर०—नहीं तो यह और क्या है ! कुछ बेचारे भले आदमियोंके लड़कोंको न्यौता देकर बुलाना और उनकी पीठ पर सदाके लिए

एक गधेका बोझ लाद देना—इससे तो मछली पकड़ना बहुत अच्छा है। और फिर मछली खाई जाती है, तो पर दामादको कोई खाता नहीं।

राजकु०—यह क्या बक रहा है !

शाल्व—इसे बाहर निकाल दो राजकुमार ।

धीवर०—निकाल दोगे ! निकाल तो दो देखें !

राजकु०—यह क्षत्रियोंकी सभा है। यहाँ धीवरको आनेका अधिकार नहीं है।

धीवर०—मैं राजा हूँ ।

शाल्व—धीवर राजा कैसा ?

धीवर०—मैं हस्तिनापुरके महाराजका ससुर हूँ ।

राजकु०—कैसे ससुर ?

धीवर०—महाराज शान्तनुने मेरी बेटी मत्स्यगन्धाको मुझसे माँगकर उसके साथ अपना ब्याह किया है ।

राजकु०—सच ?

धीवर०—बिल्कुल ही अनजान बन गये। देखते हो मन्त्री ! बिल्कुल अनजान बन गये। देखते हो ?

मन्त्री—जी हाँ ।

धीवर०—'जी हाँ' क्या।—कहो 'हाँ महाराज'। यह सदा याद रक्खो कि मैं राजा हूँ ।

राजकु०—क्षत्रिय लोग नीच जातिकी लड़की ले सकते हैं, लेकिन किसी नीच जातिवालेको अपनी लड़की दे नहीं सकते ।

धीवर०—तब तो यह एक बड़ी भारी कुरीति है।—क्यों मन्त्री !

मन्त्री—हमारे महाराजका घराना यहाँ आये हुए किसी राजाके घरानेसे कम नहीं है ।

राजकु०—धीवरका और घराना!—वह तो स्वतःसिद्ध शूद्र और नीच जाति है।

धीवर०—मन्त्री! ये लोग मेरा अपमान कर रहे हैं। देखते हो?

मन्त्री—जी, सो तो देख ही रहा हूँ।

धीवर०—फिर 'जी'! कहो, 'देखता हूँ महाराज'।

राजकु०—उठ जाओ।

धीवर०—क्यों?

शाल्व—तुम यहाँ क्या करोगे?

धीवर०—ब्याह करूँगा।

राजकु०—सीधी तरह न उठोगे तो आदमीसे गर्दना देकर निकाल देगा।

धीवर०—क्या गर्दना देकर?

राजकु०—हाँ।

धीवर०—गर्दना?

राजकु०—गर्दना।

धीवर०—मन्त्री—

राजकु०—उठो आसनसे। नहीं तो—

धीवर०—क्यों! उठूँ क्यों!—मन्त्री!

मन्त्री—(कानमें कहता है) राजासाहब आसनसे उठ आइए।

धीवर०—क्यों? क्यों? आसनसे क्यों उठूँ? आसनसे—

मन्त्री—पहले उठ आइए, फिर बात कीजिएगा। नहीं तो—

धीवर०—नहीं तो क्या?

मन्त्री—नहीं तो अपमान होगा।

धीवर०—सच, अपमान होगा?

मन्त्री—ए लीजिए अपमान हुआ ।

धीवर०—ऐं—ऐं—

मन्त्री—उठिए । नहीं तो सब इज्जत गई !

धीवर०—ऐं—(उठता है ।)

मन्त्री—अब बाहर निकल चलिए ।

धीवर०—बाहर क्यों निकल चलूँ ?

मन्त्री—पहले निकल चलिए । नहीं तो—

धीवर०—अपमान होगा क्या !

मन्त्री—होनेमें बाकी क्या है ! चलिए—

धीवर०—बाप रे ।—चलो चलो । (जाते जाते लौटकर) लेकिन—

मन्त्री—फिर ' लेकिन '—चले आइए ।

(हाथ पकड़कर खींच ले जाता है ।)

शाल्व—इसे यहाँ आने किसने दिया ?—लो वे महाराज आरहे हैं ।

[शंखध्वनिके साथ काशिराज और घूँघट काढ़े हुए उनकी तीनों सज्जिता कन्याओंका प्रवेश ।]

द्वारपाल—महाराजकी जय हो ! (बाजा बजता है ।)

काशिराज—महाराजवृन्द ! आप लोगोंके पधारनेसे मेरा राज्य, मेरा महत्व और मेरी सभा धन्य हो गई ।

बन्दीजन पढ़ते हैं ।

वन्दे रत्नप्रभवमधिपं राजवंशप्रदीपं ।
शत्रुत्रासं प्रबलमतिशः क्षेममौलिं वरेण्यम् ॥
धन्या काशिस्त्वयि समुदिते धन्यमेतत्कुटीरं ।
आगच्छ स्वःप्रतिमनगरीं स्वागतं ते क्षितीश ॥

काशि०—सब राजालोग आगये ?

राजकु०—हाँ पिताजी ।

काशि०—मेरी प्यारी बड़ी कन्या अंबा ! तो फिर अब तुम अपनी रुचिके अनुकूल वरका वरण करो।

(अंबा अपनी सखी सुनन्दाके साथ जाकर एकदम शाल्वके गलेमें जयमाला डालना चाहती है। इतनेहीमें माधवके साथ भीष्म प्रवेश करते हैं।)

भीष्म—ठहरो।

(सब चौंककर उनकी ओर देखने लगते हैं। अंबा रुक जाती है।)

काशि०—(आगे बढ़कर) महामति भीष्म ! आओ, बैठो।

भीष्म—बैठनेकी जरूरत नहीं है काशिराज। मैं यहाँ निमन्त्रित होकर नहीं आया। मैं ब्याह नहीं करना चाहता। मेरे लिए यहाँ आसन भी नहीं डाला गया।

काशि०—तो फिर मैं क्या हस्तिनापुरके युवराजके अकस्मात् यहाँ आनेका कारण पूछ सकता हूँ ?

भीष्म—मैं काशिराजकी छोटी दोनों कन्याओंको हस्तिनापुरके महाराज विचित्रवीर्यके लिए माँगता हूँ।

काशि०—सो कैसे होगा युवराज ! यह तो स्वयंवर सभा है।

भीष्म०—सो मैं जानता हूँ काशिराज। तो भी मैं काशिराजकी इन दोनों कन्याओंको चाहता हूँ। अगर महाराज मेरे इस प्रस्तावको स्वीकार न करेंगे तो मैं इन कन्याओंको बलपूर्वक हरकर ले जाऊँगा।

काशि०—कुमार ! यह असंभव है।

भीष्म—तो महाराज मुझे क्षमा करें ! मैं इन दोनों कन्याओंको हरे लिया जाता हूँ। जिसमें ताकत हो वह मुझे रोके। आओ—

(अंबाका हाथ पकड़ते हैं।)

शाल्व—इतनी हिम्मत ! (तरवार खींच लेता है।)

काशि०—निश्चय ही कुमारका सिर फिर गया है। नहीं तो इस स्वयंवर-सभामें बिना बुलाये आकर—

भीष्म—जानता हूँ महाराज कि इस स्वयंवरमें हस्तिनापुरके राजाको क्यों नहीं निमन्त्रण दिया गया। इसका कारण यही है कि वर्त्तमान महाराजकी माता धीवरकी कन्या है। आप लोगोंने पहले ही मृत महाराज शान्तनुके ससुर धीवरराजको इस सभासे निकाल बाहर कर दिया है। लेकिन भीष्म अपने जीते रहते अपने पिताका अपमान कभी नहीं होने देगा—यह याद रखिएगा। हस्तिनापुरके अधिपति महाराज विचित्रवीर्यकी स्त्रीके रूपमें मैं इन कन्याओंको लिये जाता हूँ। जिसमें शक्ति हो, वह मुझे रोके।

शाल्व—महाराजाओ!

(सब राजे सिंहासनों परसे उठकर भीष्मके विरुद्ध तरवारें खींच लेते हैं।)

भीष्म—सैनिको!

[दश सशस्त्र सैनिकोंका प्रवेश।]

भीष्म—इन कन्याओंको अपने घेरेमें लेजाकर मेरे रथ पर बिठा दो। कोई राहमें रोके तो शस्त्र चलानेमें संकोच न करना। (माधवसे) चाचा, आप भी इनके साथ जाइए।

(सैनिकगण तीनों कन्याओंको घेर कर ले जाते हैं। माधव भी साथ जाता है।)

भीष्म—अब महाराजाओ! अगर आप लोग एक एक करके या सब मिलकर, हस्तिनापुरके महाराजके विरुद्ध खड़े होना चाहते हैं तो अकेला भीष्म आप सबको युद्धके लिए आह्वान करता है।

शाल्व—आक्रमण करो।

(सब मिलकर भीष्म पर आक्रमण करते हैं।)

भीष्म—तो फिर बाहर आओ। इस विवाह-सभाको तुम्हारे रक्तसे कलुषित नहीं करूँगा।

(तरवार घुमाते हुए और अपनेको बचाते हुए चलते हैं।)

शाल्व—यहीं पर मार डालो। (राह रोकता है।)

भीष्म—तो फिर यहीं हत्याकाण्ड शुरू हो! (राजाओं पर आक्रमण।)

(पाँच छः राजा भीष्मकी तरवार खाकर जमीन पर गिर पड़ते हैं। शाल्व भी घायल होकर गिर पड़ता है)

चौथा दृश्य।

स्थान—हस्तिनापुरके महलका एक हिस्सा।

समय—तीसरा प्रहर।

[सत्यवती अकेली।]

सत्यव०—मेरा लड़का ब्याहा गया, और मुझे उसकी खबर तक नहीं! मुझसे राय लेनेकी भी जरूरत नहीं समझी गई! अपने ही घरमें—मैं ऐसी घृणित हूँ!

[विचित्रवीर्यका प्रवेश।]

विचित्र०—मा मा तुमने सुना? (खाँसता है।)

सत्य०—क्या बेटा!

विचित्र०—सब राजा एक ओर थे और दादा एक ओर थे, तो भी (खाँसता है) इस युद्धमें दादाकी जीत हुई! सुना है मा?

सत्य०—सुना है बेटा!

विचित्र०—दादाके बराबर वीर तीन लोकमें नहीं है। (खाँसी।)

सत्य०—तुझे दुलहिनें पसंद आईं?

विचित्र०—(सिर झुकाकर) नहीं मा।

सत्य०—क्यों बेटा! वे क्या सुन्दरी नहीं हैं?

विचित्र०—सुन्दरी हैं! लेकिन (खाँसी) मेरी प्रकृति जैसे उनकी प्रकृतिसे मेल नहीं खाती। (खाँसी)

सत्य०—क्यों बेटा!

विचित्र०—वे बहुत चपल हैं, सदा हँसती बोलती रहती हैं, सजीव हैं और मैं रोगी हूँ, मैं उदास रहता हूँ। (खाँसी) मेरे मनमें तेज नहीं है ।

सत्य०—क्यों बेटा !

विचित्र०—न-जाने क्यों । मुझे जान पड़ता है, जैसे मैं न जाने कौन हूँ ! (खाँसी) न जाने कहाँसे आया हूँ ! पृथ्वीके साथ जैसे मेल ही नहीं खाता ! (खाँसी) मैं जीता हूँ, इसका अनुभव करनेकी शक्ति भी जैसे मुझमें नहीं है । कभी कभी मुझे सन्देह होता है कि मैं जीता हूँ या मर गया । (खाँसी) मा, इन रानियोंको मैं प्यार न कर सकूँगा । लेकिन (खाँसी) उनको देखना अच्छा लगता है—कारण (खाँसी) वे सुन्दरी हैं । उनका गाना सुनना अच्छा मालूम पड़ता है; (खाँसी) कारण, उनकी आवाज मीठी है, सुरीली है । नहीं तो—

सत्य०—बेटा विचित्रवीर्य ! तुझे दुःख काहेका है ? तू राजाका बेटा है—तुझे काहेकी कमी है ? तेरा चेहरा सदा उदास क्यों रहता है ?

विचित्र०—मुझे कोई कमी नहीं है, यही तो सबसे बढ़कर दुःख है मा। अगर मैं किसी अभावका अनुभव करता तो जान पड़ता है, उसे पूर्ण करके सुख पाता । मैं राजपुत्र हूँ। मुझे कुछ नहीं करना पड़ता। मेरे लिए जो कुछ करना है—उसे और लोग कर दिया करते हैं । मैं सभीके स्नेहका पात्र एक खिलौनाही हूँ। मैं जैसे खिलौना हूँ—जीवित मनुष्य नहीं । इसीसे शायद मेरा जीवन एक महाशून्य है, महा अवसाद है। जाऊँ, देखूँ, दादा कहाँ हैं।　　　　(प्रस्थान ।)

सत्य०—कैसा आश्चर्य है ! ब्याहके बादसे तो लड़का जैसे और भी शिथिल—और भी निर्जीव हो गया है ।

(सिर झुकाकर सोचते सोचते प्रस्थान ।)

[चिन्तित भावसे भीष्मका प्रवेश ।]

भीष्म—उस दिन बालिका थी, आज वह पूर्ण युवती है। वही मुख, वही हाव भाव, वही दृष्टिपात—सब वही हैं। केवल एक नई बिजलीही—जो कटाक्षोंमें खेलती है—अपूर्व है। उसे मैंने पहले कभी नहीं देखा। बहुत ही दुबली हो गई है। पीली पड़ गई है। उस देहलताको जवानीकी मधुरता जैसे छापे लेती है। जैसे वसन्तके समय नये पल्लव और कलियाँ निकल आती हैं, वैसे ही जवानीके आनेसे उसकी देहलताका हाल है।—यह क्या, हृदय फिर क्यों चंचल हो रहा है! प्रलोभनको मैंने पद-दलित कर रक्खा है, तो भी उसका ढका हुआ गंभीर स्वर बीच-बीचमें फूटे हुए नगाड़ेकी तरह बज उठता है।—मनुष्यका मन क्या इतना दुर्बल है!

[अंबाका प्रवेश ।]

भीष्म—(चौंककर) तुम कौन हो!

अम्बा—काशीके राजाकी कन्या अम्बा।—जरा इधर देखो युवराज! भला देखूँ, तुम पहचान सकते हो? चुप क्यों हो!—शायद ठीक याद नहीं आता! याद करा दूँ?—एक दिन उसी काशीके गंगातट पर, महलके पासवाले प्रमोदवनमें, बरगदके नीचे, घुटने टेककर जिसके आगे तुमने अपने मुँहसे यह कहकर कि "तुम्हारे रूपके द्वारपर आया हुआ भिक्षुक हूँ," परिचय दिया था, बने हुए संन्यासी, वही मैं हूँ। याद आया युवराज?

भीष्म—(सिर झुकाकर) हाँ, याद पड़ता है!

अम्बा—'याद पड़ता है!' विचित्र पुरुष हो! रूखे स्थिर स्वरसे गणितके सत्य सिद्धान्तके समान ये वचन कह दिये!—विचित्र पुरुष हो! एक दिन, जिसके पिताके अतिथि थे; जो नित्य सबेरे-शाम तुम्हारा

मनोरंजन करनेवाली—दिल बहलानेवाली—साथिन थी; जिसके पैरों-के पास बैठ कर—हाथमें हाथ लेकर—नित्य जिसकी भोली बातोंको मन्त्र-मुग्धकी तरह सुनते थे—जान पड़ता था, संसारमें और कोई सुननेकी चीज ही नहीं है; नित्य जिसके मुँहकी ओर ऐसे ताका करते थे जैसे जगत्‌में और कुछ देखनेकी चीज ही नहीं है; एक दिन जिसके साथ—

भीष्म—क्षमा करो देवी! उन बीती हुई बातोंको याद करनेसे क्या मतलब। आज तुम्हारे और मेरे बीच एक अपार सागर लहरें मार रहा है।

अम्बा—जानती हूँ युवराज! मैं तुम्हारे पास प्रेमकी भीख माँगने नहीं आई हूँ! तुम मुझे मेरे पिताके यहाँसे बलपूर्वक हर लाये हो, मैं स्वयं नहीं आई। यह तुमने सच कहा कि "मेरे और तुम्हारे बीच एक अपार सागर लहरें मार रहा है।" या इससे भी अधिक यह कहा जाय तो भी ठीक है कि तुम और मैं दोनों एक ही मनुष्यलोकमें नहीं निवास करते। तुम अगर मनुष्यलोकके निवासी हो युवराज, तो मैं—अगर स्वर्ग न पाऊँ, न सही; नरकको जाऊँगी, पर इस मनुष्यलोकको लात मार दूँगी।

भीष्म—क्यों देवी!

अम्बा—इसे जाने दो।—अब मैं तुमसे यह पूछती हूँ कि तुम मुझे यहाँ बलपूर्वक छीनकर क्यों ले आये हो?

भीष्म—स्वयंवर सभाकी गड़बड़ और कोलाहलमें मैं तुमको पहचान नहीं सका।

अम्बा—कोलाहलमें पहचान नहीं सके?—मिथ्यावादी—ठग, मुझे छोड़ दो।

भीष्म—आज्ञा दो देवी, मैं तुमको अभी तुम्हारे पिताके घर छोड़ आऊँगा।

अम्बा—नेक—बड़े ही नेक तुम हो। मगर राजकुमार होकर इतना परिश्रम तुम क्यों करोगे? जरूरत नहीं। पिताके घर नहीं जाऊँगी। अब मैं अपने पतिके पास जाऊँगी, मुझे छोड़ दो।

भीष्म—पतिके पास! देवि! तुम्हारा पति कौन है?

अम्बा—सौभराज शाल्व।

भीष्म—शाल्व तुम्हारा पति है? सर्वनाश! तुम्हारा तो उसके साथ ब्याह नहीं हुआ।

अम्बा—हो चाहे न हो—उसमें तुम्हारा क्या हस्तिनापुरके युव-राज? हो चाहे न हो, अपने हृदयमें मैंने उनको अपना पति मान लिया है। स्त्री सियारके समान दुष्ट धूर्त नहीं होती। वह हवाकी तरह अस्थिर चंचल नहीं होती—पुरुषकी तरह वञ्चक नहीं होती। स्त्री एक बार हृदयमें जिसे अपना पति मान लेती है वही भाग्यशाली मरण-पर्यन्त उसका पति है।

भीष्म—शाल्वको तुम चाहती हो?

अम्बा—क्यों न चाहूँगी? तुम क्या समझते हो युवराज कि इस पृथ्वी पर चाहनेके योग्य—प्रेमके पात्र—एक तुम ही हो? तुम क्या समझते हो कि हरएक घरमें स्त्रियाँ फूल-चन्दनसे तुम्हारी ही पूजा किया करती हैं?—हाँ, मैं शाल्वको चाहती हूँ।

भीष्म—सावधान देवी। शाल्व नीच लंपट है।

अम्बा—सावधान युवराज। शाल्व मेरे पति हैं।

भीष्म—यह अपने हाथ अपनी हत्या करना है।

अम्बा—तो इसमें तुम्हारा क्या?

भीष्म—मेरा क्या देवी ? मैं अगर रोक सकता हूँ तो तुम्हारी इस आत्महत्याको न रोकूँगा ? देवि, तुम और किसीको अपना पति पसंद कर लो। आत्महत्या मत करो।

अम्बा—तुम्हारी भी बड़ी हिम्मत है ! तुमसे यह उपदेश कौन सुनना चाहता है ! मुझे छोड़ दो।

भीष्म—आत्महत्या न करना देवी।

अम्बा—मुझे छोड़ दो।

भीष्म—यह मुझसे न हो सकेगा। क्षमा करना। बहन, मैं तुमको इतना चाहता हूँ कि तुम्हारी यह आत्महत्या मुझसे न देखी जायगी।

अम्बा—तुम चाहो या न चाहो, उससे किसका बनता-बिगड़ता है। अब मेरे ऊपर तुम्हारा कुछ अधिकार नहीं है। ब्रह्मचारी ! मुझे छोड़ दो। मैं कसम खाती हूँ—जीवन और मरणमें सदा शाल्व ही मेरे पति हैं।—छोड़ दो राजदस्यु।

भीष्म—तथास्तु बहन। द्वार खुला है। देवि, तुम अपने पतिके पास जाओ। आशीर्वाद देता हूँ, तुम यशस्विनी होओ, ब्याहसे सुख पाओ !

अम्बा—तुम्हारा यह आशीर्वाद कौन चाहता है युवराज ? मेरे जानेकी तैयारी कर दो—मैं हस्तिनापुरकी जहरीली हवा छोड़कर चली जाऊँ।

भीष्म—तथास्तु। तैयार हो जाओ। मैं तैयारी करता हूँ।

(अम्बा निष्फल क्रोधसे अपने होठ चबाती हुई जाती है।)

भीष्म—प्रिय बहन, तुम क्या जानो कि मेरे हृदयके भीतर अबतक प्रवृत्तियोंका कैसा युद्ध हो रहा था ! सच्ची वीरता यही है।

बाहुबलसे जय प्राप्त करना तुच्छ बात है—वह केवल पशुशक्तिकी साक्षी देता है। मनके मैदानमें खड़े होकर, अपनी प्रवृत्तिके साथ युद्ध करना, उसे हराना, मनुष्यकी यथार्थ शूरताका काम है।

[माधवका प्रवेश।]

माधव—देवव्रत !

भीष्म—क्यों चाचा !

माधव—विचित्रवीर्य बहुत रो रहा है। तुम जल्द चलो।

भीष्म—रोता है ? क्यों !

माधव—मालूम नहीं।

भीष्म—मैं जाता हूँ। उसे यहीं लिये आता हूँ तुम यहीं ठहरो चाचा। कुछ कहना है। (प्रस्थान।)

माधव—सब कुछ जैसे बिगड़ता ही चला जा रहा है।

[सत्यवतीका प्रवेश।]

सत्य०—कौन ? माधव ?

माधव—कौन ?—महारानी ?

सत्य०—देवव्रत कहाँ है ?

माधव—उन्हें खोजनेकी दरकार क्या है रानीसाहब ?

सत्य०—उससे जाकर कहो, मैं जरा उससे मिलना चाहती हूँ।

माधव—क्यों ?

सत्य०—मैं उससे, और तुमसे भी, पूछना चाहती हूँ कि मैं क्या इस साम्राज्यकी कोई भी नहीं हूँ, राजपरिवारकी कोई भी नहीं हूँ, विचित्रवीर्यकी कोई भी नहीं हूँ ?

माधव—किसने कहा ?

सत्य०—कहनेका प्रयोजन नहीं है। कामोंसे तो यही देख पड़ता है।

माधव—किस कामसे रानीसाहब ?

सत्य०—यही विचित्रवीर्यका ब्याह ही ले लो। काशिराजकी कन्याओंको बलपूर्वक हर लाकर तुम दोनोंने बालक विचित्रवीर्यके साथ उनका ब्याह कर दिया। मुझसे एक बार पूछा तक नहीं ! जैसे—

(गला रुँध जाता है।)

माधव—रानीसाहब ! बालकको यक्ष्मारोग हो गया है। वैद्यने कहा था कि वह जितना प्रसन्न रहेगा उतना ही उसके शरीरके और मनके लिए लाभ होगा।

सत्य०—फिर—

माधव—इसी लिए हम दोनोंने इन सुन्दरी हँसमुख आनन्दमयी बालिकाओंको लाकर उसके साथ ब्याह दिया है।

सत्य०—यह बात मुझसे पहले एक बार पूछ भी सकते थे।—क्यों चुप क्यों हो गये ?

माधव०—इसका उत्तर रानीको पसंद न आवेगा।

सत्य०—तो भी मैं सुनना चाहती हूँ।

माधव—रानीने एक पुत्रको मार डाला है। दूसरे पुत्रकी हत्या हम नहीं करने देंगे।

सत्य०—सावधान ब्राह्मण !

माधव—आँखें किसको दिखाती है धीवरकी बेटी !

सत्य०—इतनी मजाल !—सिपाहियो ! इसे बाँध लो।

(सिपाही माधवको बाँध लेते हैं।)

सत्य०—कैदखानेमें ले जाओ। इस ब्राह्मणको सियारों और कुत्तोंसे नुचवाऊँगी। फिर जो होना होगा सो होगा।

[भीष्मका फिर प्रवेश ।]

भीष्म—घरमें इतना गुल-गपाड़ा काहेका है ? (माधवको देखकर और फिर रानीको ओर देखकर ।) ओ ! समझ गया ।—बन्धन खोल दो सिपाहियो !

सत्य०—(सिपाहियोंसे) खबरदार !

भीष्म—खोल दो ! (सिपाही बन्धन खोल देते हैं ।)

सत्य०—देवव्रत ! (भीष्म उधर न देखकर चले जाते हैं ।)

माधव—रानी साहब ! क्या आज्ञा होती है ? (व्यंगके भावसे घुटने टेककर) त्वामभिवादये (तुमको प्रणाम करता हूँ ।) (उठकर प्रस्थान ।)

सत्य०—पृथ्वी, पैरोंके नीचसे निकल जा !—और—और—लज्जा तथा घृणाके मारे, गलेमें इस अनादरकी रस्सीका फंदा लगाकर, मैं महाशून्यमें लटक जाऊँ । अग्नीका प्रवाह जैसे मेरी नसनसमें दौड़ रहा है ! रोमरोमसे चिनगारियाँ निकल रही हैं ! मैं जैसे जली जा रही हूँ । यह आग मुझे जलाकर भस्म क्यों नहीं कर देती !

[विचित्रवीर्यका प्रवेश ।]

विचित्र०—मा मा !

सत्य०—बेटा !—नहीं, मैं तेरी कोई नहीं हूँ । बालक ! विचित्रवीर्य ! मैं अब तेरी मा नही हूँ ! मैं काली नागिन हूँ, जिसका जहरीला दाँत उखड़ गया है । मैं पुराने सूखेपेड़का ठूँठ हूँ, जो फिर नव पल्लवों और फूलोंसे शोभित नहीं हो सकता । तू राजपुत्र है, और मैं भिखारिन हूँ । जैसे मैं अब इस राज्यकी कोई नहीं हूँ, बालककी मा भी नहीं हूँ । जैसे—जैसे मैं रोगीके वमनको खानेवाली राहकी कुतिया हूँ । मैं तेरी मा नहीं हूँ । भीष्म तेरा भाई है । मैं तेरी कोई नहीं हूँ !—यह क्या, यह क्या बेटा ! तेरे लाल लाल गालोंपर ये दो मोतियोंके समान आँसू क्यों ढुलक पड़े ! क्या हुआ बेटा ?

विचित्र०—मैं तुम्हारा कोई नहीं हूँ ?

सत्य०—कौन कहता है बेटा ?

विचित्र०—तुम कहती हो ।

सत्य०—ना ना मैंने झूठ कहा । सब झूठ है । तू मेरा सर्वस्व है ! इस संसारमें मेरा और कौन है ! दो आँखें थीं; एक आँख फूट गई, दूसरी आँख —बेटा, तू है । तू मेरी आँखोंकी ज्योति है, मेरे शरीरका प्राण है, मेरी भूखका आहार है, मेरी प्यासका पानी है ।—आ बेटा, मेरी गोदमें आ । मैं पापिनी हूँ, तो भी मा हूँ । मैं अपमानित, दलित, विश्वकी त्यागी हुई हूँ, तो भी मा हूँ । मैंने तुझे गर्भमें धारण किया है, उसे नहीं किया ! आ बेटा, गोदमें आ—अपना सब अपमान भूल जाऊँ मेरे प्यारे पुत्र ! मेरे सर्वस्व आ । (विचित्रवीर्यको छातीसे लगा लेती है ।)

विचित्र०—भीतर चलो ! मैं तुम्हारी गोदमें सिर रखकर सोऊँगा ।

(प्रस्थान ।)

पाँचवाँ दृश्य ।

स्थान—सौभराज शाल्वका प्रमोदभवन ।

समय—सन्ध्या ।

[शाल्व और उसके मुसाहब बैठे हुए हँसी-दिल्लगी कर रहे हैं । मुसाहब लोग दिल्लगी करनेकी व्यर्थ चेष्टामें लगे हुए हैं । लेकिन जोर शोरकी हँसी उसकी कमीको पूरा कर रही है ।]

१ मुसाहब—मुझे आश्चर्य मालूम पड़ रहा है महाराज, कि काशिराजकी कन्याने ऐसा कुलटाके समान आचरण किया ।

शाल्व—जब मैंने सुना कि वह अपनी इच्छासे भीष्मके रथ पर जा बैठी है तब धनुषबाण रख दिया ।

२ मुसाहब—सो महाराजने बहुत ठीक किया ।

शाल्व—नहीं तो भीष्मकी क्या मजाल थी कि मेरे हाथसे मेरा शिकार छीन ले जाता।

३ मुसा०—मैंने सुना है, इस राजकन्याके साथ हस्तिनापुरके युवराजका पहलेका प्रणय-सम्बन्ध था।

शाल्व—हाँ सो तो था ही!

४ मुसा०—तो फिर राजकुमारी महाराजके गलेमें जयमाला डालने क्यों आई—यह भी एक खटकेकी बात है।

शाल्व—इसमें आश्चर्य क्या है? (पाँचवें मुसाहबकी ओर देखता है।)

५ मुसा०—सो इसमें आश्चर्य क्या है! महाराजका चेहरा देखकर हम मर्द होकर भी जब प्रेम-पाशमें पड़ जाते हैं, तब काशिराजकी कन्याके लिए तो कुछ कहना ही नहीं है। (सब हँस उठते हैं।)

१ मुसा०—तो फिर वह राजकुमारी भीष्मके रथ पर क्यों चली गई?

२ मुसा०—कुलटाओंके आचरण ही ऐसे होते हैं।

शाल्व—वह स्त्री पूरी तौरसे कुलटा है।

३ मुसा०—ब्याहके पहलेहीसे?

४ मुसा०—मैंने सुना था महाराज, भीष्मने उसका त्याग कर दिया है।

शाल्व—भीष्म ब्रह्मचारी है न!

४ मुसा०—तो फिर वह भीष्मके पास कितने दिन रहेगी? उसे यहाँ आना ही होगा।

शाल्व—आवेगी तो क्या, और न आवेगी तो क्या?

२ मुसा०—महाराजके एक सौसे अधिक सुन्दरी स्त्रियाँ हैं।

शाल्व—एक अधिक या कम होनेसे क्या आता-जाता है?

३ मुसा०—यदि सचमुच ही वह राजकुमारी महाराजके पास लौट आवे ?

शाल्व—तो मैं उसे फिर भीष्मके पास लौटा दूँगा।

४ मुसा०—हाँ; आकर नाचना गाना चाहे तो नाचे गाये।

(शाल्व हँसता है और चौथे मुसाहबकी पीठ ठोकने लगता है।)

५ मुसा०—महाराजके हजारों वेश्यायें हैं। अब औरकी जरूरत ही क्या है ?

शाल्व—लो वे नाचनेवालियाँ आगईं। ये सब अम्बा ही तो हैं। आओ नाचो—गाओ।

[नाचनेवालियाँ नाचती और गाती हुई प्रवेश करती हैं।]

गजल।

बहा दे यह नाव साधकी तू बढ़ावमें, क्यों दहल रहा है।
चढ़ा दे बस पाल और बह चल, गँवार नाहक मचल रहा है॥
अजब तमाशा है, देख चलकर, उमंग जो हो तो फिर हो ऐसी।
उठा है तूफान और आँधी, नदीका जल भी उछल रहा है॥
वृथा है सब युक्ति और चिन्ता, पड़ा भी रहने दे दुःख पीछे।
बहेंगे चिल्लायँगे हँसेंगे, इसीमें अब जी बहल रहा है॥
अवश्य फिरना ही होगा रूखे कठिन किनारे पै, तू समझ ले।
हिसाब करना ही होगा लेना औ देना सबसे जो चल रहा है॥
जो नावको डूबना है डूबेगी, हमको मरना है तो मरेंगे।
मरेंगे गोतेमें गँदला पानी जरासा पीकर, जो खल रहा है॥

[अंबाका प्रवेश।]

१ मुसा०—यह और कोन आई !

२ मुसा०—सच तो है, यह और कौन आई !

४ मुसा०—सुन्दरी तो है !

३ मुसा०—महाराज इसकी ओर एकटक ताक क्यों रहे हैं ?

शाल्व—रमणी, तुम कौन हो ?

अम्बा—मैं काशिराजकी कन्या हूँ।

शाल्व—ओहो पहचान गया—अम्बा!—बड़ा आश्चर्य है! यहाँ किस मतलबसे आई हो? चुप क्यों हो रही?

अम्बा—काशिराजकी कन्या आज शाल्वके द्वार पर अकेली उपस्थित है। तो भी क्या राजेन्द्र, उसे अपनी प्रार्थना मुँहसे कहनी होगी।

शाल्व—सचमुच आश्चर्यकी बात है! सुन्दरी, तुम्हारी बातें तो मुझे उत्तरोत्तर विस्मयमें डाल रही हैं!

अम्बा—याद है महाराज, स्वयंवरा होनेपर सभामें मैं तुम्हारे गलेमें जयमाला डालने गई थी। इस समय अपने परिणीत पतिके पास आई हूँ।

शाल्व—सो क्या, मैं तुम्हारा पति हूँ?

अम्बा—जिस घड़ी मैंने तुम्हें वरमाला अर्पण की, उसी घड़ीसे तुम मेरे पति होगय महाराज। इसीसे मैं—

शाल्व—विचित्र स्त्री, तो क्या मैं समझूँ कि तुम मुझसे पत्नीत्वकी भिक्षा माँगती हो!

अम्बा—यह पत्नीत्वकी भिक्षा माँगना नहीं है। यह पतित्वका दान है। स्वयंवरकी सभामें जब तुम गये थे महाराज, तब मुझसे पत्नीत्वकी भिक्षा माँगने गये थे। वह भिक्षा मैंने तुमको दी थी। उसके बाद शक्तिके बलसे भीष्म वीर इन दुर्बल हाथोंसे वह भिक्षा छीन ले गये। मैं उस भिक्षाको फिर तुम्हारे भिक्षाके पात्रमें फेर लाई हूँ।

शाल्व—आश्चर्य है—! बड़ा साहस है!—लौट जा नारी। मैं तेरा यह दान नहीं चाहता।

अम्बा—नहीं स्वामी! मुझे अपनी भिक्षा लौटानेका, अधिकार नहीं है। राजन्, जो भिक्षा दे डाली सो दे डाली! स्त्री जो देती है वह एकदम दे डालती है—जन्म भरके लिए दे डालती है। इतने सहजमें—

अनायास—अकातरभावसे—जगतमें इतना बड़ा दान और कोई नहीं करता। एक हृदयरत्न, एक जीवन, एक बड़ी भारी आशा, एक बड़ा भारी भविष्य, सुख, दुःख, स्वच्छन्दता, स्वाधीनता, ज्ञान, धर्म-कर्म-शान्ति–मोक्ष, जन्म-जन्मान्तर—सब कुछ—एक दिनमें—एक घड़ीमें उसको दे डालना, जिसको कभी पहले देखा तक नहीं, जिसका नाम तक पहले कभी नहीं सुना, जिसका पहलेका हाल कुछ नहीं मालूम, जिसके बारेमें यह भी नहीं मालूम कि वह स्वर्गकी देवता है या नरकका कीड़ा ! ऐसे पुरुषको सर्वस्व दे डालना—इतना बड़ा दान कर देना—स्त्रीके सिवा इस संसारमें और किसीसे नहीं हो सकता। महाराज, मैं फाँद पड़ी हूँ, मालूम नहीं—अमृतकी नदीमें या विषके कुंडमें, स्नेहके आलिंगनमें या सर्पके दंशनमें ! फाँद पड़ी सो फाँद पड़ी ! मेरे नीचे गिरनेको अब कोई रोक नहीं सकता ! किसीमें इतनी शक्ति नहीं।

शाल्व—(मुसाहबोंसे) बड़ा ही आश्चर्य है ! मुसाहबो, ऐसी ढीठ याचना करनेवाली राजकन्या तुमने और कभी देखी है।—जाओ सुन्दरी ! सौभराज भीष्मकी जूठनको कभी ग्रहण नहीं करेगा। जाओ, तुम्हारा पति भीष्म है। अगर पति चाहती हो तो उसीके पास जाओ। और, अगर भीष्म तुमको नहीं चाहता तो मेरी सभामें तुम भी रहो। मेरी इन सैकड़ों वेश्याओंके साथ तुम भी नाचो-गाओ। मैं तुमको भोजन और वस्त्र दूँगा।

अम्बा—स्वर्गनिवासी देवराज ! इस सिर पर अपना वज्र गिराओ। मैं अपनेको इसी कूड़ेके कुण्डमें डालने आई हूँ ! गलेमें फंदा डालकर मरनेके लिए रस्सी नहीं मिली ? कल्पवृक्षके फूलोंकी सुगन्ध छोड़कर इस गलितकुष्ठकी दुर्गन्धदूषित वायु सेवन करने आई हूँ ?—सौभराज !

मैं राजकन्या नहीं हूँ, कुलकामिनी नहीं हूँ, वारांगना हूँ। मेरे सिर पर लात मारो।

१ मुसा०—यह कैसा रूप है!

२ मुसा०—महाराज औरत पागल हो गई है।

अंबा—पागल नहीं हूँ महाराज! तुम्हारे आश्रयकी भिक्षा मागने मैं नहीं आई हूँ। सड़े हुए मुर्दोंके कुण्डमें आत्मविसर्जन करके आई थी।—क्यों?—यह नहीं कहूँगी। यह प्रकाश करना असह्य हो रहा है। —आ मेरे जीवनमें प्रलयका अन्धकार छा जा। उस घने अंधकारमें मैं भागकर छिप जाऊँ! यह भ्रमणशील लक्ष्यहीन जीता हुआ नरक-कुण्ड है।—यह नराधम है! यह नरकका कीड़ा है! इसे मैं अपना पति बनाने आई थी! फाँसी लगानेको रस्सी नहीं मिली!

३ मुसा०—महाराज! जान पड़ता है, औरत आपको गालियाँ दे रही है।

अंबा—तो फिर यहीं पर जीवन-नाटकका पर्दा गिर जाय।

(कमरसे कटार निकालना चाहती है।)

२ मुसा०— निकाल दो।

शाल्व—भीष्मकी इस वेश्याको दूर कर दो।

अंबा—(कटार निकालकर) तो अब मैं नहीं मरूँगी —तू मर!

(बिजलीकी तरह तेजीसे जाकर शाल्वकी छातीमें कटार भोंक देती है।)

सब मुसा०—यह क्या! यह क्या! (शाल्वको घेर लेते हैं।)

अम्बा—नरहत्या करनेवाली, पिशाची, कुलटा सब कुछ मैं हूँ, केवल भीष्मकी वेश्या नहीं हूँ। (अट्टहास करके प्रस्थान।)

[आकाशमें शिव, पार्वती और व्यासका प्रवेश ।]

व्यास—विश्वंभर, मेरी समझमें नहीं आता । आप क्या कह रहे हैं, कि मेरे पिता पराशर हैं ? माता सत्यवती है ? पिता महर्षि हैं ? माता धीवरकी कन्या है ?

शिव—लज्जासे सिर क्यों झुकालिया ऋषिवर ? पराशर ऋषि अवश्य थे, तो भी मनुष्य—दुर्बल मनुष्य मात्र थे ! तामस मुहूर्त्तमें अगर उनका पदस्खलन हो गया था तो उन्होंने युगव्यापी तप करके और शुष्क अध्ययन करके उसका प्रायश्चित भी कर डाला !—जाओ व्यास, अगर तुम खुद कामको जीत सको तो अपने पिताकी निन्दा करना । और काया और मनसे—बाहर और भीतर—तुम कामदेवको जीत सको, तो तुम महादेव हो ।

व्यास— क्या विश्व भरमें किसीने भी कामदेवको नहीं जीता ?

शिव—एक आदमीने जीता है ।

व्यास—उसका क्या नाम है ?

शिव—भीष्म ।

व्यास—देवव्रत भीष्म ?

शिव—हाँ एक देवव्रत भीष्म ही इस जगत्में कामदेवको जीतने-वाले हैं ! इसीसे उनका भीष्म नाम पड़ा है । कामदेवको जीत लिया है—इसीसे जगत्में भीष्म अजेय हैं ।

व्यास—भीष्म कैसे अजेय हैं ?

शिव—उन्होंने अपने शरीर और मनको कर्त्तव्यके चरणोंमें अर्पण कर दिया है । व्यास तुमने ही उन्हें कर्त्तव्यके महाव्रतकी दीक्षा दी है । तुम्ही उनके गुरु हो ।

व्यास—समझ गया भगवन् !—अच्छा चरणोंमें प्रणाम करता हूँ ।

(प्रणाम और प्रस्थान ।)

शिव—कैसा आश्चर्य है !

पार्वती—ऐसा क्या आश्चर्य है प्राणनाथ !

शिव—प्रियतमे, मैं जानता था कि इस ब्रह्माण्ड भरमें अकेला मैं ही कामदेवको जीतनेवाला हूँ, लेकिन देखता हूँ, पृथ्वी पर मेरी बराबरीका दावा करनेवाला एक महापुरुष और भी है।

[गंगाका प्रवेश करके शिव, और पार्वतीको प्रणाम करना।]

शिव—गंगा, क्या खबर है ?

पार्वती—बहन, कुशल तो है ?

गंगा—सब कुशल है देवी !—महादेव ! तुम्हारे दो पत्नी हैं—एक पत्नी तुम्हारे आधे अंगमें निवास करती है, और दूसरी पत्नी, प्रभू एक दिन तुम्हारे सिर पर थी। आज वही तुम्हारी पत्नी तुम्हारे चरणोंके तले पाप-तापसे तपी हुई पृथ्वीकी छाती पर है। मनुष्योंके शोकसे मैं दिन रात रोती हूँ, अब मुझसे यह सहा नहीं जाता।

शिव—किस लिए गंगा ?

गंगा—अबला स्त्रियाँ पुरुषोंके द्वारा प्रतिदिन ही सताई जाती हैं—वह देखो महादेव, काशिराजकी कन्या अम्बा उपेक्षिता होकर द्वारद्वार मारी मारी फिरती है। उसका पिता अपनी सन्तानको आश्रय नहीं देना चाहता। इसीसे उन्मादिनी अम्बा आज भीष्मके प्रेमके द्वारपर भिक्षुकीके रूपमें उपस्थित है।—नाथ, इस मूढ़ देवव्रतको सत्यके बन्धनसे मुक्त कर दो।

शिव—नहीं गंगा। संसारसे इस महामहिमाको मैं नहीं उठाऊँगा। पृथ्वी शून्य हो जायगी।

गंगा—तो फिर इस स्त्री (अंबा) के हृदयमें ही शान्ति दो।

शिव—गंगा, जिसे जो मिलना चाहिए, मैं उसे वही दूँगा। तुम लौट जाओ देवी! अपने कर्त्तव्यका पालन करो। (सबका प्रस्थान।)

छठा दृश्य ।

स्थान—हस्तिनापुरके महलमें भीष्मके रहनेका घर ।

समय—चाँदनी रात ।

[अम्बा और सुनन्दा ।]

अम्बा—सखी, पैर काँप रहे हैं !

सुनन्दा—मनको मजबूत करो ।

अम्बा—युवराजसे क्या कहूँगी ?

सुनन्दा—जो कुछ तुम्हारा जी चाहे । यह ठीक है कि अबला नारीका धर्म सदा 'छिपाना' है और अपनी रक्षाके लिए 'संयम' ही उसका दुर्ग है। लेकिन जब वही नारी आक्रमण करती है तब, सखी उसका धर्म इससे बिलकुल उलटा हो जाता है !

अम्बा—लेकिन सखी, लज्जा ही रमणीका सनातन–चिरन्तन धर्म है।

सुनन्दा—उसका समय बीत गया। तुमने क्या नहीं किया! तुम सुन्दरी, शाल्वके घर पत्नीभावकी याचना करने गईं और नर-हत्याके गहरे गढ़ेमें भी उतर चुकीं। अब क्यों हिचकती हो राजकुमारी! आक्रमण करो। इस युद्धमें जीवनकी बाजी लगा दो।—प्रण कर लो, या तो कार्य सिद्ध कर लेंगे और या प्राण ही दे देंगे।—दूसरी राह नहीं है।

अम्बा—लेकिन देवव्रत तो ब्रह्मचारी हैं ।

सुनन्दा—संसारी पुरुषका ब्रह्मचर्य! यह सारहीन शौकिया संन्यास है। यह सखी, शराबीका शराब पीना छोड़ देना है। यह बिल्लीका

मांसखाना छोड़ देनेका व्रत है। यह व्रत कबतक टिक सकता है सखी!—लो वे देवव्रत आरहे हैं। मैं जाती हूँ। (प्रस्थान।)

अम्बा—सच कहा सखी—संसारी पुरुषका ब्रह्मचर्य ! अगर मैं देवव्रतकी इस प्रतिज्ञाको तोड़ न सकी तो मैं स्त्री ही नहीं।

[भीष्म प्रवेश करते हैं और अंबाको देखकर लौटना चाहते हैं।]

अम्बा—कहाँ जाते हो देवव्रत ! ठहरो। रातके आने पर सूर्यकी तरह मुझे देखकर क्यों भागते हो देवव्रत ! मैं खूनी हूँ या डाकू हूँ? साँप हूँ या शेर हूँ? व्याधि हूँ या दुर्भिक्ष हूँ?—प्रियतम!—यह क्या?—एकाएक दमभरमें तुम्हारा यह मुखमण्डल काला क्यों पड़ गया; जैसे तुम किसी बड़े भारी भयसे विह्वल हो गये हो!—यह क्यों? बोलो देवव्रत! मैने क्या किया है? कौन महा अपराध मुझसे बन पड़ा है? केवल तुमका चाहा है मैंने—और कुछ तो नहीं किया।

भीष्म—तुम्हारी बातें मै सुनचुका हूँ देवी—मगर मुझे क्षमा करो देवी! मैं ब्रह्मचारी हूँ।

अम्बा—झूठ बात है देवव्रत। तुम सुकुमार हो, तुम ज्ञानी हो, तुम वीर हो। लेकिन तुम ब्रह्मचारी नहीं हो। क्यों झूठ बोलते हो देवव्रत!

भीष्म—मैं ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर चुका हूँ।

अम्बा—उसे छोड़ दो। देखो देवव्रत! हरएक युगमें कितने ही ऋषि, महर्षि, ब्रह्मर्षि आदि हो गये हैं जिन्होंने अनायास स्त्रियोंके चरणोंमें अपनी कष्टसे की हुई अमित तपस्या अर्पण कर दी है। तुम तो ऋषि नहीं हो। एक महादेव ही कामजयी हैं और वे महेश्वर परमेश्वर हैं। परन्तु तुम तो स्वामी, ईश्वर नहीं हो। जो कोई भी मनुष्य नहीं कर सका उसे तुम कैसे कर सकते हो? देवव्रत, तुमने कामको जीता है? क्या यह सच है?

भीष्म——कामको जीता नहीं है। अगर कामको जीत लेता——मैं तुमको इतना चाहता हूँ कि अगर कामको जीत लेता——तो तुमको दुधमुँहे बच्चेकी तरह निश्चित निर्भय भावसे जोरसे छातीसे लगा लेता। हाय, स्त्रीका जो पवित्र वक्षःस्थल बच्चेके लिए अमृतका झरना है, वही युवकके प्यासे नेत्रोंमें तीव्र विषकी वर्षा करता है! जो प्राणदान करता है, वही प्राणनाश करता है! जो स्त्रीके मातृभावको प्रकट करता है, वही कामका गढ़ है! जो सौन्दर्यका देवमन्दिर है, भक्तिका प्रार्थना-मन्दिर है, वही लालसाका घर है—डाकूका अड्डा है! ना ना! मैं कामको जीतनेवाला नहीं हूँ। इसीसे अपने आपको डरता हूँ; इसीसे रमणीको डरता हूँ; इसीसे मा मा कहकर, स्नेहके पवित्र तीर्थ तीर्थयात्रीके समान, जिसकी ओर दौड़कर जाना चाहिए उसीसे उसी तरह जान लेकर भागता हूँ जिस तरह मनुष्य अजगरसे भागता है। (जाना चाहते हैं।)

अम्बा——कहाँ जाते हो प्रियतम! मुझे अपार सागरमें मत डुबाओ। (घुटने टेककर बैठ जाती है।)

भीष्म——रोओ मत देवी! मैं हृदयको आगे करके उसपर वज्रकी चोट सह सकता हूँ, भूखे बाघके गरजनेको तुच्छ समझ सकता हूँ, लेकिन स्त्रीके आँसुओंको नहीं देख सकता——स्त्रीके आँसुओंमें मेरा धैर्य गल जाता है। अम्बा——यह क्या! यह चित्त फिर चंचल हो रहा है! ना, इस प्रवृत्तिको आज मिटा दूँगा। बहन, तुम्हें आज इस शुभ मुहूर्त्तमें अपने इस हृदयके सिंहासन पर माताके रूपमें बिठाऊँगा। अन्धवासनाको आज मृत्युदण्ड दूँगा; कामनाका गला घोट दूँगा; आसक्तिकी अग्निशिखाको बुझा दूँगा; पापके कँटीले पेड़को जड़से उखाड़ डालूँगा! ——तुम मेरी माता हो!

अंबा—(चौंककर) क्या किया ! यह क्या किया ! निष्ठुर ! घातक ! ना ना, मैं नहीं मानूँगी ! मैं नहीं मानूँगी ! मुझे चक्कर आ रहा है—गिरी जा रही हूँ—पकड़ो पकड़ो प्रियतम ।

(गिरती हुई अंबाको भीष्म पकड़ते हैं ।)

भीष्म—यह क्या ! तुम काशिराजकी कन्या हो । तुम बच्चा नहीं हो । यह हीन आचरण क्या तुम्हें सोहता है ! लौट जाओ मेरी प्राणाधिका माता, मैंने तुम्हें जननीके पद पर बिठाया है—तुम्हें आज माता बनाया है । इस पवित्र माता-पुत्रके नातेको अब इस हीन उच्चारणसे कलुषित मत करो ! यह नाता सब नातोंसे पवित्र है ।

अम्बा—झूठ बात है देवव्रत ! मैं तुम्हारी माता नहीं हूँ । तुम्हारी माताका कोई काम मैंने नहीं किया ! उच्चारणमें—कहनेमात्रमें क्या ऐसा मोह है कि वह अपनी शक्तिके बलसे सत्यको मिटा देगा ?

भीष्म—तुम क्या समझो । माताके नाममें कितनी शक्ति है, सो तुम क्या समझो ! माताके नाममें जो अर्थ भरे हुए हैं वे किसी कोशमें नहीं हैं ! माताके नाममें जो अमृत है वह इन्द्रके भाण्डारमें नहीं है ! रोगशय्या पर पड़ा हुआ आतुर रोगी जब ‘ मैया ’ कह कर अपनी तीव्र यन्त्रणा प्रकट करता है तब उसकी आधीसी यंत्रणा इस अमृत-सरोवरमें डूबकर गल जाती है—उसे बहुत कुछ शान्ति मिल जाती है । माताके नामसे पशु भी वश हो जाते हैं । माताका नाम शोकसे तपे हुए हृदयको शीतल कर देता है—कानोंमें स्वर्गके संगीतकी वर्षा करता है । माताका नाम आनन्दसे विह्वल हुई जीभमें ही चिपक रहता है—बाहर नहीं आता । यह आर्तके सूखे होठों पर काँपता है और वायुके ऊपर नृत्य करता है । माताके नामसे पृथ्वी पवित्र होती है । माता नामको पाकर स्वयं जगदीश्वरी गौरी अपनेको धन्य समझती हैं ।— मा, तुम आज

अपने कामिनी-भावका दमन करो, देवी बनो। मा, अपने इस दुर्बल स्वेच्छाचारको दबा दो। पृथ्वी पर शान्तिकी अमृतधारा बरसाओ। देखो मा, तुम्हारी छातीके ऊपर यह जगत् बालककी तरह बेखटके सोता है।

अंबा—ना, मैं बहरी हूँ। मुझे कुछ नहीं सुन पड़ता। ना ना, मैं नहीं जाऊँगी। आज अथाह नरकमें डूबूँगी। अच्छा, अन्तिम बार फिर चेष्टा करके देखूँ।—उज्ज्वल चन्द्रमा, अन्धकारमें अपना मुँह छिपा लो। नक्षत्रो, बुझ जाओ। विशाल पृथ्वी, अपने कान मूँद ले।

भीष्म—तुम क्या कह रही हो ?

(अम्बा दीपककी ज्योति और बढ़ा देती है, और अपने चेहरे परसे कपड़ा हटा देती है।)

अंबा—अच्छी तरह देखो देवव्रत।—देखो।

भीष्म—देख रहा हूँ।

अंबा—क्या देखते हो ?

भीष्म—यह तो तुम नहीं हो। देखता हूँ, कोई एक उन्मादिनी सुन्दरी स्त्री खड़ी है। उसके भरे हुए गोरे गाल कामना-मदिराके पीनेसे लाल हो रहे हैं। उसकी आँखोंमें नरककुंडकी आगकी ज्वाला जल रही है। कुँदरूके समान दोनों होंठ जहरीली हँसीसे भरे और लालसासे शिथिल हैं। टेढ़ी गरदनके ऊपर अलस-विभ्रमके साथ नागिनके बच्चोंके समान केश लहरा रहे हैं। देखता हूँ, जैसे एक काल-भुजंगिन मानवीके रूपमें खड़ी है। जैसे एक प्रलोभन सजीव होकर उपस्थित है। जैसे रक्त-मांस-मय शरीरमें छिपा हुआ एक साक्षात् सर्वनाश है—जैसे जीता-जागता एक महा अभिशाप है !

अंबा—आओ प्रियतम!—इस दुःखमय संसारमें कुछ ही दिनकी तो जिन्दगी है। भोग कर लो। (हाथ पकड़ती है।)

भीष्म—(हाथ छुड़ाकर) अम्बा ! तुम्हारी यह चेष्टा निष्फल है। यह भीष्मकी वह अचल प्रतिज्ञा है, जो टल नहीं सकती। यह भीरु पुरुषका क्षणभंगुर अंगीकार नहीं है। यह याचनाकी सकाम तपस्या नहीं है। यह भीष्मकी प्रतिज्ञा है—त्यागीकी शपथ है। ग्रह चाहे अपनी कक्षासे भ्रष्ट हो जायँ, चन्द्रमा चाहे आग बरसाने लगे, नक्षत्रोंका प्रकाश चाहे बुझ जाय, पर्वत चाहे बालूके ढेरकी तरह बिखर जायँ, समुद्रका जल चाहे एक छोटे गढ़ेके पानीकी तरह सूख जाय, लेकिन भीष्मकी प्रतिज्ञा कभी नहीं टल सकती। ब्रह्माण्डके भ्रमणके बीच, क्षोभको प्राप्त संसारकी हलचलके बीच, मनुष्यके मिथ्यावादके बीच, यह भीष्मकी प्रतिज्ञा वैसे ही अटल अचल है जैसे सब नक्षत्रोंके बीच प्रकाशमान स्थिर ध्रुव तारा है।

(पर्दा गिरता है।)

चौथा अङ्क ।
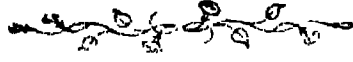
पहला दृश्य ।

स्थान—परशुरामके आश्रमके आगेका आँगन ।

समय—प्रातःकाल ।

[परशुराम वेदी पर बैठे हैं । सामने अम्बा खड़ी है ।]

अंबा—मैं और कुछ नहीं चाहती देव, मैं केवल भीष्मकी प्रतिज्ञाको तोड़ना चाहती हूँ । उनकी जीवनभरकी साधनाको निष्फल करूँगी; उनका व्रत नष्ट करूँगी; उनके घमंडको चूर करूँगी । उनके इस बनावटी वेषको छिन्नभिन्न करूँगी और सारी पृथ्वीको उनका नंगारूप दिखाऊँगी । दिखाऊँगी कि देवव्रत एक बना हुआ संन्यासी था ।

परशु०—प्रयोजन ?

अम्बा—फिरसे इस पृथ्वीतल पर नारीकी महिमाकी प्रतिष्ठा हो; फिरसे सिंहासन पर नारीकी निर्वासित क्षमता स्थापित हो; पुरुष स्त्रीको उसका न्यायसे प्राप्य अधिकार फेर दे । बस यही प्रयोजन है ।

परशु०—सो किस तरह ?

अम्बा—चराचर जगत् यह जान ले कि इस विश्वमें पुरुष प्रभु नहीं है, स्त्री ही प्रभु है । मैं यह दिखाऊँगी कि जहाँ पर नारीका रूप अपनी किरणें डालता है वहाँ पर ब्रह्मचर्य अपना सिर झुकाता है ।—कैसा आश्चर्य है भगवन् ! कामदेव—जिसके प्रभुत्वको सारा जगत् स्वीकार करता है; जिसके पुष्पबाण विश्वविजयी हैं; जिसके

पिता साक्षात् श्रीमधुसूदन हैं; जिसे भस्म करनेके कारण भगवान् शंकर महादेव कहाते हैं; उसी कामदेवके बाण आज इस तुच्छ देवव्रतकी प्रतिज्ञाको नहीं डिगा सकते!—भगवन्! प्रकृतिके इस बड़े भारी अनियमको दूर करो, स्त्रीजातिके सनातन अधिकारकी रक्षा करो, तुच्छ पुरुषके इस घमंडको चूर करो!—बस इतना ही चाहती हूँ।

परशु०—वह देवव्रत आ रहा है। तुम यहाँसे हट जाओ।

(अम्बाका प्रस्थान।)

परशु०—यह क्या सच है? यह क्या मनुष्यसे संभव है? अच्छा परीक्षा करूँगा कि देवव्रतका यह व्रत कितना दृढ़ है।

[भीष्मका प्रवेश।]

भीष्म—दास चरणोंमें प्रणाम करता है। (प्रणाम करना।)

परशु०—जय हो देवव्रत!

भीष्म—गुरुदेव, आपने मुझे याद किया है?

परशु०—हाँ। कितने ही दिनोंसे तुमको देखा न था। तुम बहुत ही शिथिल शीर्ण हो गये हो। तुम्हारा वह तेजस्वी दर्पपूर्ण सौम्य मुखमण्डल आज बहुत ही शान्त हो गया है। वह तीक्ष्ण दृष्टि आज झुकी हुई, स्नेहमयी, मलिन और अश्रुपूर्ण देख पड़ती है। मत्थे पर झुर्रियाँ पड़ गई हैं। आँखोंके नीचे स्याही जम गई है। वत्स, जैसे तुम अपने मनमें कोई दुश्चिन्ता—कोई गहरी निराशा—धारण किये हुए हो!—क्यों देवव्रत! क्या हुआ है?

भीष्म—गुरुदेव! तब मैं बालक था, अब अधेड़ होनेको आया हूँ। दिन दिन बुढ़ापा सारे शरीरमें अपना प्रभाव फैलाता जा रहा है।

परशु०—शरीरमें वह तेज नहीं है?

भीष्म—ना, वह तेज नहीं है।

परशु०—वह देवव्रत, और यह देवव्रत ! इतना अन्तर !

भीष्म—किस लिए दासको आज आपने स्मरण किया है ?

परशु०—याद है, काशिराजके यहाँ जो स्वयंवर हुआ था उसमेंसे तुम काशिराजकी कन्याओंको हर लाये थे ?

भीष्म—याद है गुरुदेव !

परशु०—काशिराजकी छोटी दोनों कन्यायें हस्तिनापुरके राजा विचित्रवीर्यकी रानी हैं। लेकिन बड़ी कन्या अंबा अभी तक अविवाहिता है।

भीष्म—यह समाचार सुन चुका हूँ।

परशु०—उसी अभागिनने आज मेरा आश्रय ग्रहण किया है !

भीष्म—समझा गुरुदेव।

परशु०—देवव्रत, तुम उसके साथ ब्याह कर लो।

भीष्म—सो कैसे गुरुदेव !

परशु०—तुमने उस राजकुमारीको छुआ है—उसका हाथ पकड़ा है।

भीष्म—तो भी उसके साथ मेरा ब्याह असम्भव है।

परशु०—असम्भव है !—तुम उसे प्यार नहीं करते ?

भीष्म—इतना प्यार करता हूँ कि उसे छूते डर मालूम होता है—कहीं असावधानताके वश होकर सौन्दर्यके उस तपोवनको कलुषित न कर डालूँ।

परशु०—बड़े आश्चर्यकी बात है !—देवव्रत ! ब्याह क्या पाप है ?

भीष्म—पाप नहीं है। विवाह पुण्यका राज्य है। किन्तु, हाय, आज मैं उस राज्यसे सदाके लिए निकाला हुआ हूँ।

परशु०—क्यों ?

भीष्म—मैंने सदाके लिए ब्रह्मचर्यव्रत ले लिया है।

परशु०—किसकी आज्ञासे ?

भीष्म—ईश्वरकी।

परशु०—ईश्वरकी ? ईश्वर कहाँ है ?

भीष्म—अपने ही हृदयमें गुरुदेव।

परशु०—यह तुमसे किसने कहा ?

भीष्म—महर्षि व्यासने !

परशु०—वह आज्ञा तुमने सुनी है ?

भीष्म—सुनी है गुरुदेव। जगद्व्यापी स्वार्थके युद्धमें, संसारके कोलाहलमें उस आज्ञाको निरन्तर नहीं सुन पाता। लेकिन कभी कभी वह घड़ी भी आती है जब उसके गूढ़ स्वरको, उसके गंभीर आह्वानको, उसके मधुर संगीतको सुन पाता हूँ।

परशु०—तुमने वह आज्ञा सुनी है ?

भीष्म—सुनी है।

परशु०—झूठ बात। मैं तुम्हारा गुरु हूँ; मैं आज्ञा करता हूँ—तुम अंबाके साथ ब्याह करो।

भीष्म—यह असंभव है गुरुदेव !

परशु०—क्या कहा तुमने ?

भीष्म—असंभव है !

परशु०—असंभव है ?

भीष्म—क्षमा कीजिएगा; मैं प्रतिज्ञाके बन्धनमें बँधा हुआ हूँ—मैं जीवन भरके लिए ब्रह्मचारी हूँ !

परशु०—तो क्या मैं यह समझ लूँ कि तुम अस्वीकार करते हो ?

भीष्म—क्या करूँ गुरुदेव !—अब ब्याह करनेका मुझे अधिकार ही नहीं है—मैं सत्यके बंधनमें बँधा हुआ हूँ ।

परशु०—उस बन्धनको तोड़ डालो ।

भीष्म—क्षमा कीजिए ।

परशु०—यही तुम्हारी गुरुभक्ति है !—तुम मेरे शिष्य हो !

भीष्म—आपका शिष्य अवश्य हूँ—लेकिन मैं भीष्म हूँ !

परशु०—परशुरामकी आज्ञा है—अपना ब्याह करो ।

भीष्म०—तो फिर मुझे मृत्युका दण्ड दीजिए, मैं यह आज्ञा न मानूँगा ।

परशु०—आज्ञा देता हूँ भीष्म, मैं भगवान् हूँ, तुम उसके साथ अपना ब्याह करो ।

भीष्म—गुरुदेव ! पिताने मृत्युके समय मेरा हाथ पकड़कर मुझसे यह भिक्षा माँगी थी कि " तुम ब्याह करना । " और, मैं यह मानता हूँ कि पिता ही जगत्में प्रत्यक्ष ईश्वर है । लेकिन तो भी मैंने उनका कहा नहीं माना । पिताकी आज्ञाके भी ऊपर अपने कर्त्तव्यको स्थान दिया।—देव ! मैं चरणोंमें गिरकर प्रार्थना करता हूँ, मुझे क्षमा कीजिए।

(प्रणाम करना चाहते हैं ।)

परशु०—तो तुम अस्वीकार करते हो ?

भीष्म —भगवन् ! क्या आप जानते हैं कि जगत्में मेरा नाम भीष्म क्यों पड़ा है ?—मैंने अपनी संभोगवासनाको तृप्त करके यह नाम नहीं पाया है । गुरुदेव, यह ब्रह्मचर्य व्रत—यह कठोर व्रत फूलोंकी कोमल सेज नहीं है । मेरा जीवन संभोग-सुखसे खाली है । मेरा सारा जीवन स्त्रीके प्रेमसे वंचित है । मेरा सारा जीवन सन्तानके सुखसे शून्य है । जो पुत्र संसारमें सब सुखोंका मूलाधार समझा जाता

है; जिस पुत्रका मुख देखकर मनुष्य अनायास ही संसारके सब दुःखोंको, रोगकी यन्त्रणाको, दारिद्र्यके कोड़ेकी चोटको, गुलामीकी ताड़नाको, दिनभरकी उदासीको भूल जाता है,जो पुत्र परदेशमें निराशाकी शून्यताको पूर्ण करता है—मरने पर परलोकके गहरे अन्धकारको प्रकाशित करता है; उसी पुत्रका मुख देखनेके सुखसे मैं जन्मभरके लिए वंचित हूँ गुरुदेव !—यह क्या कोई बड़ा भारी सुख है !—जिसके लिए मैं गुरुकी बातको टालता हूँ ?

परशु०—शिष्य, यह ब्याह करके तुम वही सुख पाओगे ।

भीष्म—क्षमा करो गुरुदेव, मैं ब्रह्मचारी हूँ ।

परशु०—भीष्म ! मैं यह अन्तिम बार कहता हूँ! ब्याह या मौत, जो चाहो सो पसंद कर लो ।

भीष्म—अगर जरूरत पड़ेगी तो मैं मौतको ही पसंद करूँगा !

परशु०—अच्छी बात है । अच्छा तो फिर परसों सबेरे कुरुक्षेत्रमें सशस्त्र परशुरामसे तुम्हारी भेंट होगी । शस्त्र लेकर आना ।

भीष्म—शस्त्र लेकर क्यों आऊँ ?

परशु०—देवव्रत, मुझे जान पड़ता है, तुम्हारा वीरताका घमंड बहुत बढ़ गया है; इसीसे तुम परशुरामकी आज्ञाको तुच्छ मानकर अस्वीकार करते हो । मैं तुम्हारे उस घमंडको मिटा दूँगा ।

भीष्म—मेरी इतनी मजाल नहीं है कि मैं भार्गवके साथ युद्ध करूँ ।

परशु०—तुम डरते हो ?

भीष्म—भय किसे कहते हैं, सो तो मैं जानता ही नहीं । तो भी मैं गुरुके निकट बिना युद्धके ही अपनी हार स्वीकार करता हूँ ।

परशु०—तुम क्षत्रियके लड़के हो ! भीरु ! मैं तुम्हें युद्धके लिए बुलाता हूँ ।

भीष्म—प्रार्थना करता हूँ—सावधान गुरुदेव! सोये हुए क्षत्रियके पराक्रमको जगाकर उत्तेजित मत कीजिए।

परशु०—मैं इक्कीस बार इस भारतभूमिको क्षत्रियोंसे शून्य कर चुका हूँ।

भीष्म—उस समय भीष्म नहीं था।

परशु०—इतनी हिम्मत!

भीष्म—गुरुदेव! शिष्य चरणोंमें प्रणाम करता है।

परशु०—शस्त्र लेकर परसों सबेरे कुरुक्षेत्रके मैदानमें युद्धके लिए आना।

भीष्म—अच्छी बात है। गुरुकी इस आज्ञाका पालन करूँगा। भीष्म चरणोंमें प्रणाम करता है।

परशु०—जाओ देवव्रत, युद्धके लिए तैयार रहना।

भीष्म—मैं तैयार रहूँगा। (प्रस्थान।)

परशु०—आश्चर्य है! भीष्म सच्चा क्षत्रिय है! क्या यह भी सम्भव है! धन्य मेरे प्रिय शिष्य! ऐसा अटल हिमालय भी नहीं होगा। सत्य, यह भी क्या सम्भव है! तुम्हारी प्रतिज्ञाकी शक्तिकी परीक्षा करूँगा। देखूँगा, यह तुम्हारी प्रतिज्ञा परशुकी तीक्ष्ण धारको सह सकती है या नहीं!

दूसरा दृश्य।

स्थान—शयनगृह।

समय—सन्ध्या।

[विचित्रवीर्य लेटा हुआ है। सत्यवती पास बैठी है।]

सत्य०—दिन बीत गया। धीरे धीरे सब कुछ प्रकाशहीन मलिन होता चला आता है। सूर्य अस्त हो रहे हैं। मुझ अभागिनने एक पुत्र

तो खो ही दिया है, दूसरा भी मृत्युशय्या पर पड़ा साँसें पूरी कर रहा है। मेरी आँखोंके आगे ही देखो धीरे धीरे उसके मुखमण्डल पर वह मृत्युकी कालिमा घनी होती आरही है। मृत्युकी गति रोकनेकी शक्ति मुझमें नहीं है।—विचित्रवीर्य हँस रहा है। स्वप्न देख रहा है।

विचित्र०—(आँखें खोलकर) मा—मा !

सत्य०—क्या है बेटा, क्या है ? चौंक क्यों उठे ?

विचित्र०—मा ! मैं कहाँ हूँ ?

सत्य०—क्यों ! अपने महलमें !

विचित्र०—ओः !—सबेरा है या सन्ध्या ?

सत्य०—सन्ध्या है।

विचित्र०—ओः—(फिर आँखें मूँद लेता है।)

सत्य०—कैसी तबियत है बेटा ?

विचित्र०—बहुत अच्छी है मा। (खाँसी।)

सत्य०—सचमुच तबियत अच्छी है ?

विचित्र०—सचमुच तबियत अच्छी है।—दादा कहाँ हैं ?

सत्य०—बाहर है। बुलाऊँ ?

विचित्र०—ना, अभी जरूरत नहीं है, पर मौतसे पहले उनसे एक-बार मिलना चाहता हूँ।

सत्य०—यह क्या कह रहे हो बेटा ! ऐसी बात कोई कहता है !

विचित्र०—देखो भूलना नहीं। मेरे मरनेके पहले जरूर उनको बुला लेना।

सत्य०—मैं उसे अभी बुलाये लेती हूँ।

विचित्र०—ना, वे तो हरघड़ी मेरे पास बैठे रहते हैं। रात भर वे पलक नहीं लगाते। कितनी ही बातें किया करते हैं। मा ऐसा बड़ा भाई और किसीका भी न होगा। (खाँसी।) जरासा जल दो मा !

(सत्यवती जल देती है ।)

विचित्र०—वह देखो सूर्य अस्त हो गये ! वह देखो मा (खाँसी).

सत्य०—क्या बेटा !

विचित्र०—ये घर देखो । इनके ऊपर सूर्यकी अन्तिम सुनहली किरणें आकर पड़ रही हैं । कैसा सुन्दर दृश्य है !

सत्य०—बहुत ही सुन्दर दृश्य है !

विचित्र०—और मेरे शरीर पर भी जीवनकी अन्तिम किरणें आकर पड़ रही हैं !—अच्छा मा, मनुष्य मरने पर कहाँ जाता है ?

सत्य०—ये बातें क्यों कर रहे हो बेटा ?

विचित्र०—ना, यों ही पूछ रहा हूँ—अच्छा, यह आकाश इतना नीला क्यों है ?

सत्य०—यह सब विधाताकी सृष्टि है । वे ही जानें ।

विचित्र०—मुझे जान पड़ता है, मृत्युका ऐसा ही नीला रंग है—मृत्यु ऐसी ही असीम है ।—अच्छा मा, दादा देखनेसे तो ऐसे वीर नहीं जान पड़ते (खाँसी)—तकिया तो ठीक कर दो मा ।

(सत्यवती तकिया ठीक कर देती है ।)

विचित्र०—मुझे जान पड़ता है, जैसे स्नेहसे ही उनका सारा शरीर बनाया गया है । किन्तु वे बड़े ही गंभीर हैं । जैसे समुद्र । (खाँसी) क्यों मा ?

सत्य०—मैं नहीं जानती बेटा ।

विचित्र०—दादा अगर ब्याह करते तो जान पड़ता है, सुखी होते । दादाने ब्याह क्यों नहीं किया मा ?

सत्य०—ओः—

विचित्र०—यह क्या ! फिर तुम हाथोंसे अपना मुँह ढँक रही हो। रोओ नहीं मा। मैं देखता हूँ, दादाके ब्याहकी बात चलते ही तुम रोती हो।—रोओ नहीं।

सत्य०—ना बेटा ! लेकिन तू यह बात न पूछ, और सब बातें पूछ—केवल—यही—बात न पूछ।

विचित्र०—क्यों मा, आज तुम्हें कहना ही पड़ेगा।—मैं सुन लूँगा तब मरूँगा। (खाँसी) देखूँ, यहाँसे परलोक जाकर शायद वहाँसे तुम्हारे लिए और उनके लिए कोई शान्तिका समाचार भेज सकूँ—बोलो मा।

सत्य०—तुम्हारे दादा स्वर्गके देवता हैं, पृथ्वीपरके मनुष्य नहीं। उन्हें हम लोग टीक ठीक पहचान नहीं सकते। वे इस स्थूल, कठिन, प्रकाश और अन्धकारसे मिले हुए स्वार्थराज्यके कोई नहीं हैं। जैसे न जाने कहाँसे यहाँ आये हैं। स्वार्थत्यागके महामंत्रको मुखसे कहकर प्रचार करने नहीं आये हैं, अपने कार्योंसे उसका प्रचार करने आये हैं।

विचित्र०—कहो मा, और भी कहो। दादाकी बातें कहो। उनके जीवनका इतिहास अनेक बार मैंने तुम्हारे मुखसे सुना है मा—(खाँसी) आज फिर कहो, मैं सुनूँ। वे जैसे एक मायाकी कहानी हैं—जितना ही सुनता हूँ उतना ही और सुननेको जी चाहता है। (खाँसी) मा जरासा पानी दो।

(सत्यवती जल देती है।)

सत्य०—बड़ा कष्ट हो रहा है ?

विचित्र०— ना कुछ नहीं। वह चन्द्रमा निकल रहा है। कैसा सुन्दर है ! (चन्द्रमाकी ओर एकटक देखना।)

सत्य०—और एक बार दवा पी लो बेटा।

विचित्र०—चुप रहो !—अद्भुत है ।

सत्य०—क्या अद्भुत है ?

विचित्र०—मा ! जरा बहुओंको तो बुलाओ । उनका एक गाना सुननेको जी चाहता है (खाँसी)—उनकी बातचीत, उनका गाना सुनना मुझे बहुत पसंद है । वे मुझे बहुत प्यार करती हैं ।—लेकिन मैं उन्हें सुखी नहीं कर सका । (खाँसी) जरा उन्हें बुलाओ तो मा !

सत्य०—अभी बुलाये देती हूँ ।　　　(सत्यवतीका प्रस्थान ।)

विचित्र०—गाना सुनते सुनते मरूँ । इस पूर्ण चन्द्रमाकी चाँदनीके प्रकाशमें, इस नील आकाशके नीचे, गाना सुनते सुनते मरूँ (खाँसी) ।

[अंबिका और अंबालिकाका प्रवेश ।]

विचित्र०—अम्बिका ! अम्बालिका ! एक गाना तो गाओ । वही गाना, जो उस दिन सन्ध्याको गाया था ।

(अंबिका और अंबालिका गाती हैं ।)

गजल ।

असीम नीले गगनके ऊपर छिटक रही चाँदनी है छाई ।
भवनके भीतर पड़ा है फिर क्यों ? चिराग फिर क्यों जलाए भाई ॥
न रखना अब और सिर पै घेरे, सनेह-बन्धनको तोड़ दे रे ।
झपटके झट दौड़ लीन हो, अब न रात पाएँगे यों सुहाई ॥
ये तान आकुल उठी पपीहेकी, उसमें डूबे अकास-धरती ।
थमा दे वीणाका शब्द, चुप हो, निकलके बाहर अब सुन ले भाई ॥
ये मौत माता ही प्यार करके, हृदयको आगे किये है आती ।
जो इस घड़ी मैं न मरने पाऊँ, तो मेरा मरना ही है भलाई ॥
समाप्त कर दी है धूलिक्रीड़ा, खरीदना बेचना भी मैंने ।
हिसाबसे लेन-देन चुकता कर आया हूँ ठीक पाई पाई ॥
बहुत थका आज हूँ मैं, इससे उठाके ले चल वहाँ पै मुझको ।
असीम उज्ज्वलमें मिल गया है असीम काला जहाँ पै भाई ॥

[भीष्म और माधवका प्रवेश ।]

(पीछे अलक्षित भावसे सत्यवती भी आती है।)

भीष्म—अब कैसे हो भैया ? (नाड़ी देखकर) यह क्या !—यह तो बिल्कुल बर्फ है ! साँस ही नहीं चलती—

माधव—(भयके भावसे) ऐं ! यह क्या हुआ देवव्रत !

भीष्म—(फिर परीक्षा करके) मृत्यु हो गई ।

माधव—बेटा ! प्राणाधिक ! (विचित्रवीर्यके शरीरसे लिपट जाता है।)

सत्य०—बेटा ! बेटा !— (मूर्च्छित होकर गिर पड़ती है ।)

(अंबिका और अम्बालिका दोनों डरे और सहमे हुए भावसे परस्पर एक दूसरेकी ओर ताकती हैं । भीष्म द्वार पकड़े खड़े रहते हैं ।)

तीसरा दृश्य ।

स्थान—हस्तिनापुरके राजमहलका एक हिस्सा ।

समय—तीसरा पहर ।

[माधव और धीवरराज ।]

माधव—उन्होंने स्वयंवरकी सभासे तुमको उठा दिया ?

धीवर०—हाँ उठा दिया ।

माधव—अच्छी तरह याद है ?

धीवर०—बहुत ही अच्छी तरह ।

माधव—उसके बाद भीष्मके साथ राजाओंका युद्ध हुआ ?

धीवर०—हाँ हुआ ।

माधव—तुमने भी युद्ध किया था ?

धीवर०—हाँ किया था ।

माधव—तुम किस ओर थे ?

धीवर०—किसी ओर नहीं ।

माधव—बीचमें थे ?

धीवर०—ठीक बीचमें भी नहीं ।

माधव—फिर ?

धीवर०—एक ओर—

माधव—तीर चलाया था ?

धीवर०—हाँ चलाया था ।

माधव—किस पर ?

धीवर०—सो तो नहीं मालूम ।

माधव—आँख मूँद कर चलाया था ?

धीवर०—हाँ ।

माधव—उसके बाद शायद तुम भागे ?

धीवर०—हाँ भागा ।

माधव—इतने दिन कहाँ थे ?

धीवर०—जंगलमें ।

माधव—वहाँ क्या देखा ?

धीवर०—बाघ ।

माधव—पहले तो तुम कह चुके हो—रानी ।

धीवर०—हाँ, शायद कह तो चुका हूँ !

माधव—फिर ?

धीवर०—फिर उसने मेरा पीछा किया ।

माधव—किसने ? बाघने या रानीने ?

धीवर०—सो कुछ ठीक समझमें नहीं आया ।

माधव—पीछा किया ?

धीवर०—हाँ पीछा किया ।

माधव—और तुम शायद एकदम जान लेकर भागे !

धीवर०—हाँ मैं भागा—जान लेकर भागा !

माधव—वहाँसे भागकर एकदम यहाँ आये ?

धीवर०—एकदम यहाँ आया ।

माधव—तुम्हारा मंत्री कहाँ है ?

धीवर०—मर गया ।

माधव—कैसे मरा ?

धीवर०—मेरे तीरसे ।

माधव—तुम्हारे तीरसे ?

धीवर०—बादको यही तो मालूम हुआ ।

माधव—ओ !—तुमने आँख मूँदकर जो तीर चलाया था वह शायद मंत्रीहीके लगा था ?

धीवर०—यही तो जान पड़ता है ।

माधव—तुम नहीं मरे ?

धीवर०—ना ।

माधव—जीते हो ?

धीवर०—जान तो पड़ता है, जीता हूँ ।

माधव—कहाँ हो ?

धीवर०—बीचमें ।

माधव—किसके बीचमें ?

धीवर०—एक ओर युद्ध और एक ओर रानी है ।

माधव—रानी ? या बाघ ?

धीवर०—बाघ ।

माधव—जान पड़ता है, तुम पागल हो गये हो ?

धीवर०—जान तो पड़ता है, हो गया हूँ !

माधव—अब क्या करोगे ?

धीवर०—यही तो सोच रहा हूँ ।

माधव—यहाँ रहोगे ?

धीवर०—यही सोचता हूँ ।

माधव—या घर लौट जाओगे ?

धीवर०—अरे बाबा !

माधव—तुम्हारी स्त्री देखनेमें कैसी है ?

धीवर०—बापरे बाप !

माधव—देखो धीवरराज, मैं तुम्हें एक सलाह देता हूँ ।

धीवर०—क्या ?

माधव—घर लौट जाओ ।

धीवर०—रानीके पास ?—बापरे !

माधव—देखो, स्त्री चाहे जैसी हो, उसके जैसा कामकाजी आदमी और नहीं मिल सकता !

धीवर०—सो कैसे !

माधव—देखो, महीने देकर आदमी रक्खो—देखोगे, जो रोटी पकाता है वह बरतन नहीं माँजता, जो बरतन माँजता है वह लड़कोंको खिला-पिलाकर पालता नहीं । लेकिन स्त्रीके द्वारा जूता सीनेसे लेकर दुर्गापाठ तक सब काम कराया जा सकता है। ऐसी स्त्रीको मत छोड़ो ।

धीवर०—बात तो सच है ।—ओ बाबा—(काँपता है ।)

माधव—क्या है ?

(धीवरराज नेपथ्यकी ओर उंगली उठाकर दिखाता है ।)

माधव—अच्छा हुआ तुम्हारी रानी यहीं आगई । लो मैं सब झगड़ा मिटाये देता हूँ ।

[धीवरकी रानीका प्रवेश ।]

धी० रानी—अरे कलमुँहे ! अन्तको दामादके घर आकर डेरा डाला है ! अरे अभागे मर्द—

माधव—इतनी जल्दी—इतनी तेजी ठीक नहीं रानी साहबा ! सुनो, ये तुम्हारे शब्द अश्लील हैं ।

धी० रानी—इसीसे क्या—

माधव—यह ठीक पतिभक्तिका लक्षण नहीं है ।

धी० रानी—ऐसे ही पतिकी तो भक्ति की जाती होगी !

माधव—पति चाहे जैसा हो, वह पति है । इस जन्ममें तो और दूसरा पति होनेका उपाय नहीं है । उसके साथ मेल करके ही रहना चाहिए । नहीं तो जीवन सदा अशान्तिसे बीतता है ।

धी० रानी—बात तो सच है । अच्छा, अब आओ, घर चलो ।

माधव—जाओ धीवरराज ! तुम्हारी स्त्री अब बहुत ही नरम भाषामें तुमको बुला रही है ।—जाओ ।

धीवर०—यह अक्सर मेरा बड़ा अपमान करती है ।

धी० रानी—मैं हूँ तो अपमान भी करती हूँ । नहीं तो कोई तुम्हारा अपमान करनेवाला भी नहीं है । कहीं जाकर देखो न, देखूं—कौन अपमान करता है ?

धीवर०—क्यों नहीं करेगा ? उस दिन स्वयंवरकी सभामें ही उन लोगोंने अपमान किया था !

धी० रानी—तुम्हारा अपमान किया था ? यह क्या ! मनुष्य तो मनुष्यका ही अपमान करता है । गोबरके छोतका भी कोई अपमान करता है ?—(माधवसे) तुमने कहीं सुना है ?

माधव—छी छी छी ! तुम्हारा पति क्या गोबरका छोत है ! अब अपमान मत करो ।

धी०रानी—अच्छा—अब घर चलो ।—अब अपमान नहीं करूँगी ।—आओ ।

माधव—जाओ ।—जाकर हाथ पकड़ लो ।

(धीवरराज धीरे धीरे जाकर डरता हुआ अपनी स्त्रीका हाथ पकड़ता है ।)

माधव—यह ठीक नहीं हो रहा है ! डरो नहीं ।

धीवर०—क्या करूँ ?

माधव—जरा आदरके और प्यारके साथ हाथ पकड़ो ।

धी०रा०—आदर और प्यार फिर कभी होगा। (खींचकर ले जाती है।)

माधव—बेशक दोनों विचित्र हैं ।

चौथा दृश्य ।

स्थान—गंगातट ।

समय—प्रातःकाल ।

[बहुतसे लोग स्नान कर रहे हैं और बहुतसे गा रहे हैं ।]

गीत ।

पतित-उधारनि गंगे ।

श्यामवृक्षघनतटविप्लाविनि धूसरतरंगगंगे ॥ प० ॥
बहु नग नगरी तीर्थ भये तुव चूमि चरणयुग माई,
बहु नरनारी धन्य भये हैं तेरे नीर नहाई,
बहो जननि यहि भारतमहँ तुम बहुशतयुगसों आई,
हरे भरे करि बहु मरु-प्रान्तर शीतलपुण्यतरंगे ॥ प० ॥
नारदकीर्त्तनपुलकित केशव, तिनकी करुणा झरती,
ब्रह्मकमंडलुसों उछली, शिवसीसजटापर परती,

गिरी गगनसों शतधारा, ज्यों ज्योति-उत्स तम हरती,
भूपर उतरि हिमालय जड़महँ शोभित सागरसंगे ॥ प० ॥
जब तजि भवके सुखदुख मैया, सोवहुँ अन्तिम शयने,
बरसौ कानन निज जलकलरव, देहु नींद मम नयने,
बरसौ शान्ति सशंकित हियमहँ, बरसि अमृत सम अंगे,
मा भागीरथि ! जाह्नवि ! सुरधुनि ! कलकल्लोलनि गंगे ॥ प० ॥

(सबका प्रस्थान ।)

[गंगाका प्रवेश ।]

गंगा—इसी नदीतट पर बहुत दिनसे भीष्म और परशुरामका घोर शस्त्रयुद्ध हो रहा है । न कोई जीतता है और न कोई हारता है । संसारने भयसे अवाक् होकर वह युद्ध देखा है—और विस्मयके साथ समुद्रगर्जनके समान वह समरकल्लोल सुना है । तो भी, इतने दिन लड़कर भी भीष्म नहीं हारे । धन्य भीष्म ! धन्य पुत्र !

[व्यासका प्रवेश ।]

व्यास—जननी जाह्नवी, व्यास चरणोंमें प्रणाम करता है ।

गंगा—क्या खबर है व्यास ?

व्यास—जननी, तुम्हारे किनारे आज मैं यह क्या देख रहा हूँ ! मनुष्य और भगवान्‌का यह कैसा घोर और विधिविरुद्ध युद्ध हो रहा है ! क्षत्रिय और ब्राह्मणका—शिष्य और गुरुका संग्राम क्या उचित है ? तुम जननी, भयसे चुपचाप बिना हिलेडुले इस दुर्घटनाको देख रही हो ?

गंगा—भयसे नहीं व्यास, बड़े ही आनन्दसे चुपचाप देख रही हूँ । पुत्रके गौरव-गर्वसे आज मैं फूली नहीं समाती । एक ओर गुरुदेव हैं, दूसरी ओर शिष्य है । ब्राह्मणके सामने क्षत्रिय खड़ा है । भगवान्‌के विरुद्ध उनका उत्पन्न किया हुआ मनुष्य है । तो भी हिमाचल-

की तरह अटल होकर मेरा पुत्र भीष्म युद्ध कर रहा है ! किसने कब ऐसा आश्चर्य देखा है ? किसका ऐसा पराक्रमी पुत्र है व्यास ?—

व्यास—तो भी जननी, ब्राह्मण और क्षत्रियका यह युद्ध अनुचित है।

गंगा—कभी नहीं । पुत्र व्यास ! भार्गवने इक्कीस बार इस पृथ्वी-को क्षत्रियोंसे शून्य कर दिया है । उन्हींके रक्तबीजसे उद्भूत ब्राह्मणके घमंडको मिटानेके लिए भीष्मने जन्म लिया है ।

व्यास—मगर ईश्वरके साथ मनुष्यका युद्ध क्या संगत है—क्या वैध और उचित है माता ?

गंगा—वत्स व्यास ! यह मनुष्यजीवन भी क्या ईश्वरके साथ अनन्त और नित्य युद्ध नहीं ? एक ओर मृत्यु है और उसके काले रंगके पिशाचोंका दल है, और दूसरी ओर असहाय दुर्बल मनुष्य है । मनुष्यके दुःखोंको देखकर मैं दिनरात निर्जन एकान्तमें रोया करती हूँ—रोना निष्फल है-—वह बेकार पत्थर पर सिर दे दे मारना है । तुम क्या समझोगे, व्यास तुम क्या समझोगे !

व्यास—तो भी माता—

गंगा—व्यास ! मनुष्य भ्रान्तिके सागरमें पड़ा हुआ है, तो भी वह अपनी शक्तिके बलसे तरंगगर्जनको पददलित करता हुआ निर्भय भावसे चला जा रहा है—यह क्या साधारण घटना है ? मनुष्य घने गहरे अन्धकारसे निकलकर सूर्यकी तरह सभ्यताके प्रकाशपूर्ण मार्गमें जा रहा है—यह क्या तुच्छ बात है ? मनुष्यका जन्म अभावके गर्भमें हुआ है, और वह स्वार्थके युद्धकी गोदमें पला है; तो भी वह अपनी शक्तिसे स्वार्थत्यागके शिखर पर चढ़ गया है—यह क्या अत्यन्त सहज गौरव है व्यास ? उन सब मनुष्योंमें भी मेरा पुत्र भीष्म सर्वोपरि है,—

जिसके चरणोंमें मृत्यु भी शान्तरूप धारण किये लोट रही है—स्वार्थत्यागके कोड़ेकी कड़ी चोटसे डर कर सिर नीचा किये पड़ी हुई है!

व्यास—मगर ईश्वरके साथ—

गंगा—मेरे लिए केवल एक ईश्वर है और वे महादेव हैं—मैं उन्हींकी आज्ञा मानती हूँ।

[महादेवका प्रवेश।]

महा०—तो गंगा—मैं आज्ञा देता हूँ कि इस युद्धको शान्त करो—अपने शान्तिमय जलसे इस अग्निको बुझाओ। देवव्रत इच्छा-मृत्यु हैं—उनकी मृत्यु उनकी इच्छाके अधीन है, और परशुराम भी अमर हैं। इस युद्धका अन्त नहीं है। गंगा, अगर और कुछ दिनतक यह युद्ध होता रहा तो प्रलय हो जायगा।

गंगा—जो आज्ञा स्वामी!—लेकिन महादेव, आपने माताके हृदयसे माताका गर्व छीन लिया!

महा०—पर इस युद्धमें परशुरामकी ही हार होगी।

(महादेवका प्रस्थान।)

गंगा—तो फिर वही हो—अच्छा जाओ ऋषिवर। (प्रस्थान।)

व्यास—अब द्वेष मिट गया। चराचर जगत्की भ्रान्ति मिट गई। कैसी गल्ती थी! शंकर, तुम सचमुच शंकर (कल्याणकर्ता) हो।

(व्यासका प्रस्थान।)

[भीष्मका प्रवेश।]

भीष्म—कहाँ हैं भार्गव?—इसी टीले पर उनकी राह देखूँगा।

(टीलेपर खड़े होते हैं।)

भीष्म—कितनी दूर तक दिखाई पड़ता है! उस पार घने श्याम रंगके पेड़ोंकी पंक्तिके ऊपर उषाकी सुनहली किरणें स्वागत-चुम्बनके समान आकर पड़ रही हैं। इधर उज्ज्वल रेती दूर तक दिखाई दे

रही है । बीचमें देवी जाह्नवी हैं ।—जननी ! यह तुम्हारा बहुविस्तृत जलमय वक्षःस्थल अपार करुणासे परिपूर्ण है । हर एकको हृदयमें स्थान देनेके लिए तैयार यह तुम्हारी गोद मनको मुग्ध बनाती है, द्वेषको दूर भगाती है, उमड़े हुए ईर्षा और अहंकारके भावको शान्त करती है—माता, चरणोंमें प्रणाम करता हूँ । (प्रणाम करके बैठ जाते हैं ।)

[परशुरामका प्रवेश ।]

परशु०—देवव्रत तो पहलेहीसे बैठे हैं ।—देवव्रत !

भीष्म—(चौंककर) आगये गुरुदेव ! (प्रणाम करते हैं ।)

परशु०—उठो वीर ! आज निर्मल प्रभातकालमें, इस गंगातट पर, इस अरुण-किरण-रञ्जित नील आकाशके नीचे, हाथ भरके फासले पर खड़े होकर, भीष्म और परशुराम दोनों, सिर पर शिरस्त्राण और शरीर पर कवच धारण किये—हाथमें खड्ग लिये—आँखें लाल और मुट्ठी मजबूत किये—युद्ध करेंगे । आज यह फैसला होगा कि बाहु-बलमें कौन श्रेष्ठ है ? भीष्म या परशुराम । लो—तरवार लो ।

भीष्म—युद्ध किस लिए गुरुदेव ! दूर पर दृष्टि डालकर देखिए—कैसा अपूर्व दृश्य है ! उस पार सूर्यनारायण निकल रहे हैं—धीरे धीरे पूर्व दिशामें प्रकाश फैलता आ रहा है । दिन और रातके इस प्रशान्त सन्धिस्थलमें, इस धीमी वसन्तऋतुकी हवाके सुशीतल संचारमें, गंगाके पवित्र तट पर अब युद्ध किस लिए ?

परशु०—देखूँगा, कि इस द्वापरयुगमें ब्राह्मण बड़ा है या क्षत्रिय ।

भीष्म—आँखोंके आगे खड़े हुए गुरुदेवके शरीर पर मैं कैसे प्रहार करूँगा ?

परशु०—तुम्हारे सारे पाप तुम्हारे रुधिरके प्रबाहमें धो जायँगे । भीष्म, युद्ध करो । मैंने तुमको समरके लिए बुलाया है । तुम तरवार

लो, और मैं अपना वह परशु दूँ, जिससे इक्कीस बार इस पृथ्वीको क्षत्रियोंसे शून्य कर चुका हूँ ।—भीष्म, हाथमें शस्त्र लो ।

भीष्म—अच्छा तो फिर वही हो !—स्वर्ग, पृथ्वी और पातालके रहनेवालो, इस अपूर्व संग्रामको ध्यान देकर देखो—

परशु०—देवव्रत, अपनेको बचाओ । (दोनोंका युद्ध ।)

भीष्म—बस अब नहीं । गुरुके शरीरको चोट पहुँचा चुका ।

परशु०—कुछ नहीं, कुछ नहीं भीष्म, मेरे बाएँ पैरमें साधारणसी चोट लगी है । शस्त्र लो, आओ युद्ध करो । और ! और भीष्म ! बहुत दिनोंसे मैंने ऐसा युद्ध नहीं किया था । मेरे सब अंगोंमें—नसनसमें—गर्म रुधिर युद्धके उल्लाससे नाच रहा है । युद्ध करो । और ! और !

भीष्म—और नहीं । गुरुके निकट शिष्य हार स्वीकार करता है ।

परशु०—लेकिन मैं गुरु, बिना अपने शस्त्रके बलसे प्राप्त किये हुए जयको नहीं स्वीकार करता ।—देवव्रत ! फिर तरवार लो ।

भीष्म—गुरुदेव !—

परशु०—इस समय कुछ भी अनुनय विनय नहीं चलेगा । आओ, युद्ध करो । और कुछ नहीं चाहता—युद्ध करो वीर । बहुत दिनसे मैंने ऐसा युद्ध नहीं किया था शिष्यश्रेष्ठ । आओ । युद्ध करो । युद्ध करो ।

(फिर दोनोंका युद्ध ।)

(भीष्मकी तरवारके प्रहारसे परशुरामके हाथसे परशु गिर पड़ता है । परशुराम झुककर फिर उसे उठाते हैं ।)

भीष्म—बस अब नहीं ! (तरवार फेक देते हैं ।)

परशु०—यह क्या भीष्म ! मैं हार नहीं मानूँगा । युद्ध करो, युद्ध करो—

भी०—भगवन् !—

परशु०—युद्ध करो । देवव्रत, मुझे यही गुरुदक्षिणा दो । युद्ध करो—युद्ध करो ।—यही अन्तिम बार है—किन्तु इस बार प्रलय होगा । भीष्म ! तरवार लो ! विलंब नहीं सहा जाता । (परशु उठाते हैं ।)

(इतनेमें दोनोंके बीचमें होकर गंगा नदी बहने लगती है । धीरे धीरे नदीका घाट चौड़ा होता चला जाता है । परशुराम अन्तर्धान हो जाते हैं । फिर नदीके बीचसे गंगा प्रकट होती है ।)

गंगा०—शाबास ! देवव्रत शाबास ! मेरे बेटे, तुम धन्य हो । देखो बेटा, आँख उठाकर देखो, भीष्मके अलौकिक अद्वितीय पराक्रमको देख कर विस्मय और आनन्दसे संसारके सब लोगोंके रोमांच हो आया है । वीरश्रेष्ठ, वह देखो, ऊपर आकाशसे स्वर्गवासी देवगण तुम्हारे सिर पर फूलोंकी वर्षा कर रहे हैं ।

[परशुरामका प्रवेश]

परशु०—और देखो वीर, परशुराम अपने शिष्यके गौरवसे फूले नहीं समाते ।—धन्य हो देवव्रत ! मैं भी तुमसा शिष्य पाकर धन्य हूँ । मैं केवल तुम्हारी परीक्षा ले रहा था । भीष्मको मारनेके लिए परशुराम नहीं आये थे । सचमुच आज मैंने देख लिया कि वीरतामें, विक्रममें, साहसमें या स्वार्थत्यागमें—इस विशाल पृथ्वीमण्डल पर तुम्हारे तुल्य और कोई नहीं है ।—मेरे शिष्य तुम धन्य हो ! देवव्रत ! प्राणाधिक ! आओ तुमको गलेसे लगा लूँ ।

पाँचवाँ दृश्य ।

स्थान—हस्तिनापुरका राजमहल । अन्तःपुर ।

समय—रात ।

सत्यवती अकेली गाती है ।

पद ।

केहि सुख जीवन राखैं ।
मेरे चन्द्र सूर्य दोउ अथए, फूटी दोऊ आँखैं ।
चार ओर बस अंधकार हैं, बुझी सबै अभिलाखैं ।

सत्य०—मेरे दोनों पुत्र नहीं रहे । मैं आज घृणित, पददलित, विधवा महारानी हूँ । तो भी अनन्तयौवना हूँ !—बड़ा अच्छा वर था ऋषिवर !—धन्य जगदम्बा ! तेरी असीम करुणा है ! मैया, तेरा दयामयी नाम बहुत ठीक है !—ना ना, यह सब वृथा है । किसीका दोष नहीं है जननी, यह सब दोष मेरा ही है । यह दंभ नियम पर लाल लाल आँखें करके टूट पड़ा था—इसने आकाश तक सिर उठाया था, माता—तुमने एकही लातमें उसे चूर करके मिट्टीमें मिला दिया। मदके वश होकर मैंने संसारमें जिस धर्मके गढ़ पर चढाई की थी, वह गढ़ अभीतक वैसा ही अक्षत, अच्युत बना हुआ गर्वसे सिर उठाये खड़ा है; और मैं घृणित, दलित होकर पैरोंके नीचे पड़ी लोट रही हूँ ।—महेश्वरी, तेरी नियम-शृंखलाकी जय हो !—प्रचण्ड सूर्यको वह बादल ढके लेता है, जलकणोंसे मिली हुई शीतल हवा चल रही है—थकनसे आँखोंमें नींद आरही है । सो जाऊँ । (धरती पर सोजाती है ।)

[*भीष्म और व्यासका प्रवेश । साथमें मुक्ता दासी है ।*]

मुक्ता—यहीं पर तो अभी थीं !

भीष्म—वे देखो, वहाँ लेटी हुई हैं ।

व्यास—ये ही मेरी माता हैं !

सत्य०—(नींदकी हालतमें) ना ना, मत छुओ—मुझे मत छुओ—मैं कुँआरी हूँ—

मुक्ता—ये देखो सपना देख रही हैं—

भीष्म—बीचबीचमें क्या इसी तरह इस हालतमें बका करती हैं ?

मुक्ता—हाँ, जी हाँ ।

भीष्म—इतनी दुर्बल हो गई हैं !

सत्य०—ना ब्राह्मण, ब्राह्मण—मैं वर नहीं चाहती, मैं वर नहीं चाहती । मुझे छोड़ दे, मुझे छोड़ दे । तेरे पैरों पड़ती हूँ । छोड़ दे ।

व्यास—अभागिन बेचारी !

सत्य०—मेरा बेटा कहाँ है ? मेरा—

व्यास—यह तुम्हारा बेटा खड़ा है जननी !

सत्य०—कौन ! कौन ! (उठ खड़ी होती हैं ।)

भीष्म—ये महर्षि व्यासजी हैं ।

व्यास—और भी एक परिचय है—द्वीप (टापू) में मेरा जन्म हुआ है, इससे मैं द्वैपायन कहलाता हूँ और मेरा काला रंग है; इससे मुझे कृष्ण द्वैपायन भी कहते हैं ।

सत्य०—द्वीपमें जन्म हुआ है ?

व्यास—मेरे पिता पराशर ऋषि हैं ।

भीष्म—गिरती हैं—सँभालो ।

(मुक्ता सत्यवतीको थाम लेती है ।)

सत्य—(क्षीण स्वरमें) फिर ?

व्यास—मेरी माता सत्यवती हैं—महाराज शान्तनुकी रानी।

सत्य०—बेटा—बेटा—यह क्या, चक्कर आ रहा है—क्षमा करो देवगण! मेरे पापोंको धो दो। अपने पुत्रको पुत्र कह कर पुकारनेका अधिकार मुझे दो।—पुत्र व्यास!—नहीं नहीं, मैं क्या प्रलाप बक रही हूँ!—ऋषिवर! मैं—यह धीवरकी कन्या, यह अभागिन महाराज शान्तनुकी विधवा रानी, यह नारी देशपूज्य ऋषिश्रेष्ठ व्यासकी जननी है?

व्यास—हाँ तुम्हीं मेरी जननी हो।

सत्य०—तुम्हारी जननी!—बेटा! बेटा!—सच?—मैं माता हूँ, और तुम पुत्र हो! मैं कलंकिनी हूँ, तुम भारतप्रसिद्ध व्यास ऋषि हो!—बेटा व्यास, यह वाणी सुनकर क्या तुम मुझे घृणा नहीं करते? ना ना घृणा न करना। निष्ठुर जगत्में इस बातकी घोषणा कर दो कि "मत्स्यगन्धा कलंकिनी है, भ्रष्टा है, पापिनी है और पतिकी हत्या करनेवाली है!"—प्रचार कर दो। पर बेटा, तुम घृणा न करो। मैं कलंकिनी हूँ—

व्यास—तथापि पुत्रके लिए जननी जननी ही है। सदा आशीर्वाद दो माता। (घुटने टेक देते हैं।)

भीष्म—यह क्या! पापिनीके पैरोंके नीचे महर्षि व्यास!

व्यास—जननीके पैरों पर पुत्र सिर रखकर प्रार्थना करता है। जननी ही पुत्रके लिए गुरु है। शिष्यको गुरुके आचारके सम्बन्धमें विचार करनेका कुछ अधिकार नहीं है। माताका दर्जा ब्राह्मणसे बढ़कर है। माताका दर्जा ऋषिसे बढ़कर है। जननी स्वर्गसे भी बढ़कर प्यारी है।

भीष्म—किन्तु जो स्त्री कुलटा है—

व्यास—देवव्रत ! तुम महत् हो, तो भी क्षत्रियके बेटे हो। क्षमाकी महिमा समझनेकी तुममें शक्ति नहीं है। भीष्म, तुम क्षत्रियके महत्त्वके सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गये हो—पर अब भी ब्राह्मणसे बहुत नीचे पड़े हुए हो।

भीष्म—परशुराम भी ब्राह्मण थे। उन्होंने अपनी कुलटा माताका सिर काट डाला था।

व्यास—परशुराम ब्राह्मण हैं भीष्म? हाँ ब्राह्मण ही हैं। परशु उनका अस्त्र है? अपना धर्म छोड़कर जो ब्राह्मण क्षत्रियके धर्मको ग्रहण करता है, वह फिर ब्राह्मण नहीं माना जा सकता। शास्त्र छोड़कर शस्त्रकी चर्चा करना ब्राह्मणका काम नहीं है। इसीसे भार्गव रामचन्द्रसे हार गये। क्षत्रियसे ब्राह्मणकी हार हुई। भगवान् मनुष्यसे पराजित हो गये।

भीष्म—मैं अपने गुरुकी निन्दा नहीं सुन सकता।

(जाना चाहते हैं।)

व्यास—ठहरो देवव्रत ! सुनो वीर, तुम क्षत्रिय हो। शस्त्रकी चर्चा करो, शास्त्रकी चर्चा मत करो। अपनी कक्षासे हटो नहीं—प्रलय हो जायगा। (सत्यवतीसे) देवि ! मेरी माता ! व्यासके पुण्य-बलसे तुम्हारे सब पाप धो जायँ। मेरे वरमें स्नान करके तुम सब पापोंसे मुक्त हो जाओ। तुम व्यासकी जननी हो—अपने चरणोंकी धूलसे मेरा मस्तक पवित्र करो।

सत्य०—यह क्या स्वप्न देख रही हूँ? यह क्या सच है?—यह कैसी पहेली है ! यह क्या व्यंग्य है?—यह तो—कुछ समझमें नहीं आता।

सत्यवती गिरना चाहती हैं, इतनेमें गंगा प्रवेश
करके उन्हें पकड़ लेती हैं।)

गंगा—सत्यवती !—स्थिर होओ !

सत्य०—(क्षीण स्वरसे) कौन हो तुम रमणी !

गंगा—मैं गंगा तुम्हारी सौत हूँ। मेरे ही गर्भसे देवव्रतका जन्म हुआ है। सदा मनुष्यके दुःख देखकर रोया करती हूँ—बहन, विश्वंभरसे यही महाधिकार मैंने पाया है ! बढ़ी हुई घमण्डकी गतिका गर्व मैं चूर्ण करती हूँ; व्यथितके लिए आँसू बहाती हूँ; सहानुभूतिके मारे घृणितको गलेसे लगा लेती हूँ; शान्ति-जलसे पछतावेको धो देती हूँ —बहन! मेरे आँसुओंके जलसे तुम्हारे पहलेके सारे पाप धो जायँ।

छठा दृश्य।

स्थान—पहाड़के किनारे मसान ।

समय—रात ।

[पर्वतके शिखर पर बैठी अंबा तपस्या कर रही है। मसानमें महादेवके आगे भूतगण गाते हैं।]

भूतनाथ भव भीषण भोला विभूतिभूषण त्रिशूलधारी।
भुजंगभैरव विषाणभूषण ईशान शंकर श्मशानचारी ॥
वामदेव शितिकंठ उमापति धूर्जटि पशुपति रुद्र पिनाकी।
महादेव मृड् शंभु वृषध्वज व्योमकेश त्र्यम्बक त्रिपुरारी
स्थाणु कपर्दी शिव परमेश्वर मृत्युंजय गंगाधर स्मरहर।
पञ्चवक्तृ हर शशांकशेखर कृत्तिवास कैलासविहारी ॥

(धीरे धीरे सबेरा होता है और भूत गायब हो जाते हैं।)

महा०—(अंबासे) तुम कौन हो ? किस लिए इस पर्वतके शिखर पर तप कर रही हो ?

अंबा—(आँखें खोलकर) आप कौन हैं ?

महा०—मैं महादेव हूँ।

अंबा—(उठकर) महादेव ! (पर्वतके शिखरसे नीचे उतरती है।)

अंबा—काशिराजकी कन्या अंबा चरणोंमें प्रणाम करती है।

महा०—कुमारी ! तुम किस लिए यह कठोर तप कर रही हो ? खाना-पीना-सोना छोड़कर अपने कुसुम-कोमल शरीरको क्यों कष्ट दे रही हो ? तुम क्या चाहती हो ?

अंबा—भीष्मकी मृत्यु, और वह भी मेरे हाथसे—इतना ही चाहती हूँ।

महा०—यह कैसा वर है नारी ? तुम केवल प्रतिहिंसाके लिए अपने इस यौवनप्लावित सुन्दर श्रेष्ठ शरीरको मिटा रही हो ? राजकुमारी ! यह बात क्या रमणीको सोहती है ?

अंबा—क्यों नहीं सोहती महेश्वर ? पुरुष क्या समझते हैं कि स्त्रियाँ सिर झुकाकर चुपचाप उनके सब अविचारों और अत्याचारोंको सहती रहेंगी ? उनकी ममताहीन कठिन जहरीली तरवारके आगे स्त्रियाँ अपनी गरदन ही बढ़ती रहेंगी ? उनके मर्मभेदी व्यवहारके बदले उन पर स्निग्ध स्नेहधाराकी वर्षा करती रहेंगी ?

महा०—स्त्रीका यही काम है—यही कर्त्तव्य है।

अंबा—और पुरुषका काम है नित्य अत्याचार करना—तरह तरहसे सताना !—ना ना, यह मैं नहीं स्वीकार कर सकती कि पुरुषका धर्म है हलाल करना और स्त्रीका धर्म है केवल सिर झुकाकर सब कुछ सह लेना।

महा०—यही रमणीका कर्त्तव्य है। स्त्रीकी जातिका सहनशीलता एक प्रधान गुण है। स्त्री सदा इस जगत्में स्नेहवती, प्रेममयी और

सेवामयी है। वह फूलोंमें कमलके समान सरोवरके सुविमल जलमें केवल प्रफुल्लित विकसित रहकर शोभा-सौन्दर्यको फैलाती रहती है। —यही नारीका धर्म है। रमणी यदि रमणीके धर्मको छोड़ देगी तो पृथ्वीपरसे गौरव-गरिमा उठ जायगी।

अंबा—उठ जाय महादेव। मेरी इसमें क्या हानि है ? मुझे क्या ? ब्रह्माण्डकी रक्षाका भार मैंने नहीं ले रक्खा है। जिन्होंने सृष्टिकी रचना की है, वे ही उसकी रक्षाकी चिन्ता करें।

महा०—सुनो पुत्री !—

अंबा—सुननेको समय नहीं है भीष्मको मारना ही मेरी प्रतिज्ञा है। उससे आप मुझे एक तिलभर भी नहीं डिगा सकते। वरदान दोगे या नहीं ? मैं बदला चाहती हूँ—प्रतिहिंसा ! बोलो—दोगे या नहीं ?

महा०—अगर न दूँ ?

अंबा—तो फिर यहीं आसन जमाकर तप करूँगी शंकर ! यह वर न दोगे ? तुम्हें देना ही पड़ेगा। तुम क्या नियमके अधीन नहीं हो ? तुम क्या स्वेच्छाचारी हो विश्वनाथ ? देना ही पड़ेगा तुमको ! मैंने सुना है, तन-मनसे कीगई साधना कभी निष्फल नहीं जाती—प्रभु, इसी जगह पाप-पुण्यमें भेद नहीं है। एकान्त साधनाको सफल होना ही होगा—इस जन्ममें या दूसरे जन्ममें, एक दिन उसे सफल होना ही होगा। किसीकी तपस्या कभी निष्फल न होगी। बोलो, यह वर दोगे या नहीं ?

महा०—यह वरदान मैं नहीं दे सकता। तुम और कोई वर माँग लो। देवव्रतकी मृत्यु उनकी इच्छाके अधीन है। उनको बिना उनकी इच्छाके मार डालना असंभव है।

अम्बा—मेरी साधनाके बलसे यह देवव्रत, केवल इच्छासे नहीं, हाथ जोड़कर घुटने टेक कर अपनी मृत्युकी प्रार्थना करेगा।—महादेव! मैं बहस नहीं करना चाहती । मैं भीष्मकी मृत्यु चाहती हूँ, और वह मृत्यु इन्हीं कुसुम-कोमल हाथोंसे । बोलो, दोगे या नहीं ?

[कुछ दूरी पर संन्यासीके वेशमें भीष्मका प्रवेश ।]

महा०—और वर माँगो ।

अंबा—नहीं, मैं और वर नहीं चाहती ।

महा०—अतुल सम्पत्ति माँग लो !

अम्बा—मुझे न चाहिए ।

महा०—अनन्त यौवन ?

अम्बा—मैं और कुछ नहीं चाहती । यही एक वर चाहती हूँ । दोगे या नहीं ?

महा०—तुम विचित्र स्त्री हो !

अम्बा—हाँ विचित्र स्त्री ही हूँ !

महा०—विचित्र प्रतिहिंसा है ।

अम्बा—बहुत ही विचित्र है ।—यह वर दोगे या न दोगे भूत-नाथ—बोलो । अगर न दो तो चले जाओ । मैं फिर तप आरंभ करूँ । कहो, यह वर दोगे या न दोगे मृत्युञ्जय ?

महा०—तथास्तु ।—लेकिन इस जन्ममें नहीं । दूसरे जन्ममें । रमणी, तुम फिर इस पृथ्वी पर द्रुपदराजकी कन्या होकर जन्म लोगी । किन्तु तुम्हें इस प्रतिहिंसा-प्रवृत्तिके कारण स्त्रीभाव छोड़ना पड़ेगा । दूसरे जन्ममें तुम आधी स्त्री और आधी पुरुष होओगी ।—पुरुषकी हत्या करनेवाली कोई (सम्पूर्ण) स्त्री हो—ऐसा पैशाचिक वर मैं नहीं दे सकता । इसीसे यह वर देता हूँ नारी ।

अम्बा—दासी कृतार्थ हुई। प्रणाम करती हूँ। (प्रणाम करना।)

महा०—विचित्र स्त्री है ! (अंतर्द्धान हो जाते हैं।)

अम्बा—अब सारा जगत् स्त्रीकी प्रतिहिंसाके प्रतापको देखे ! रमणीकी प्रतिहिंसाको देवगण देखें ! रमणीकी प्रतिहिंसा, मरने पर भी नहीं जाती ! अब रमणीको कोई 'अबला' नहीं कहेगा; अब कोई स्त्रीकी क्रोधसे लाल हुई आँखें देखकर हँसेगा नहीं। अब पुरुष बेखटके स्त्रीके लात नहीं मारेगा। नारीके रोनेसे उसके आँसूका हर एक बूँद आगकी चिनगारीकी तरह प्रज्वलित हो उठेगा। स्त्रीकी लम्बी साँसें पुरुषके कानोंमें साँपकी फुफकार जैसी जान पड़ेंगी। स्त्रीका आर्त्तनाद पुरुषको मृत्युका शाप देगा।—देखो भीष्म, देख संसार, नारीकी पिशाची मूर्ति देख। स्त्रीके हृदयसे भक्ति, स्नेह, क्रोध, घृणा आदि सब मिट जायँ—केवल प्रतिहिंसा रहे—प्रतिहिंसा ! प्रतिहिंसा ! (प्रस्थान।)

भीष्म—समझ गया राजकुमारी, त्यागी जानेके कारण ही तुमने यह भैरवी मूर्ति धारण की है।—हाय अगर मैं तन मनसे गलकर एक करुणाका सागर बन जा सकता, तो उसीके जलसे तुम्हारी इस जलनको बुझाता।—विश्वपति ! मुझे यह वर दो कि मेरे रक्तसे यह रमणी तृप्त हो और मैं हँसते हँसते इसे वह रक्त दे सकूँ।

(पर्दा गिरता है।)

पाँचवाँ अङ्क।

पहला दृश्य।

स्थान—कौरवोंकी सभा।

समय—प्रातःकाल।

[दुर्योधन, दुःशासन, द्रोण, भीष्म आदि बैठे हैं। सामने श्रीकृष्ण खड़े हैं।]

कृष्ण—महाराज दुर्योधन! धृतराष्ट्र मृत महाराज विचित्रवीर्यके बड़े बेटे हैं और पाण्डु छोटे। धृतराष्ट्र जन्मान्ध थे, इससे उन्होंने राज्य नहीं पाया; पाण्डुको राजगद्दी मिली। तुम एक सौ एक भाई धृतराष्ट्रके पुत्र हो, इस कारण राजाके पुत्र नहीं—राजाके पोते हो। लेकिन युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई पाण्डुके पुत्र होनेके कारण राजपुत्र हैं। यह राज्य उन्हीं लोगोंका है। कमसे कम इस राज्यमें उनका आधा हिस्सा है—उससे उन्हें कोई वञ्चित नहीं कर सकता।

दुःशासन—किन्तु उनका हिस्सा—यहाँ तक कि स्त्री भी—युधिष्ठिर पाँसोंके खेलमें हार गये हैं। हम लोगोंने रिआयत करके उन्हें उनकी स्त्री फेर दी है।

कृष्ण—उस जुआ खेलनेका प्रायश्चित्त वे लोग यथेष्ट कर चुके। राजपुत्र होकर बारह वर्ष तक वनवासी रहे, एक वर्ष अपनेको छिपाकर दूसरेकी नौकरी भी उन्होंने की। अब वे पाँच भाइयोंके लिए सिर्फ पाँच गाँव माँगते हैं।

दुर्योधन—वे लोग अगर राज्य चाहते हैं तो युद्ध करके लेलें। उनमेंसे भीम तो भरी सभामें बहुत धमकाकर कह गया था कि वह अपनी

गदाकी चोटसे मुझे चूर कर डालेगा—और दु:शासनका खून पियेगा।

दु:शासन—दादा, उस बातके उठानेकी जरूरत नहीं ? हम राज्य वापस नहीं देते। राज्य हम लोगोंका है उसे, नहीं लौटाते। सीधी बात है।

कृष्ण—किन्तु युधिष्ठिर तो आधा राज्य भी नहीं माँगते।

दु:शासन—हम चौथाई भी न देंगे।

कृष्ण—वे चौथाई भी नहीं चाहते। सिर्फ पाँच गाँव माँगते हैं।

दु:शासन—हम एक भी नहीं देंगे।

दुर्योधन—युद्ध करके लें। भीम बहुत ही—

दु:शासन—फिर वही, दादा—तुम भीमका नाम क्यों लेते हो?—सीधी बात यही क्यों नहीं कहते कि राज्य नहीं देंगे ?

कृष्ण—शकुनि! तुम बराबर दुर्योधनके कान भर रहे हो? तुम्हीं इस षड्यन्त्रकी जड़ हो।

शकुनि—(आश्चर्यका भाव दिखाकर) मैं ?

कृष्ण—महाराज दुर्योधन! मैं तुमसे उदार बननेके लिए नहीं कहता, दाता बननेके लिए नहीं कहता, देवता बननेके लिए नहीं कहता। तुम इस समय हस्तिनापुरके राजा—भारतके सम्राट् हो। राजाका कर्त्तव्य है न्याय करना।—न्याय करो। वे तुम्हारे भाई हैं। वे बलवान् हैं, विराट्के यहाँके युद्धमें इस बातका निर्णय हो गया है। वे क्षमाशील हैं, द्वैतबनमें गन्धर्ववाले झगड़ेमें तुम इसका भी प्रमाण पा चुके हो। वे निरीह सीधे सादे हैं; इसका प्रमाण यही है कि वे अपना सारा राज्य छोड़कर केवल पाँच गाँव तुमसे माँगते हैं। ऐसे भाइयोंसे बिगाड़ करके उन्हें क्रोधित मत करो। ऐसे भाइयोंको शत्रु न बनाओ। नहीं तो याद रक्खो सर्वनाश हो जायगा!

द्रोण—जाइए वासुदेव! आपका समझाना यहाँ सफल नहीं होगा। यह ऊसर मरुभूमि है। यहाँ बरसातका पानी नहीं ठहरता।

कृष्ण—शकुनि! पाप जो करना था सो तुम कर चुके। अब उसे और न बढ़ाओ। पापकी मात्रा पूर्ण हो चुकी है। धर्म अब नहीं सहेगा। देखो, तुम चाहो और चेष्टा करो, तो यह युद्ध रुक सकता है।

शकुनि—(आश्चर्यसे) मैं?

कृष्ण—हाँ तुम! तुम इनके मामा हो। तुम इनके मन्त्री हो। तुमने ही क्षमताकी मदिरा पिलाकर दुर्योधनको मतवाला बना दिया है। तुम इस राजमहलको पापके पत्थरोंसे जड़ रहे हो। तुम—न जानें किस मन्त्रके बलसे—इन लोगोंके—खासकर इस अबोध युवक (दुर्योधन) के मन पर अपनी छाप जमाये बैठे हो।

शकुनि—(आश्चर्यसे) मैं! ना वासुदेव मैं इस मामलेके बीचमें नहीं हूँ।

कृष्ण—तो अभी तुम दुर्योधनके कानमें क्या कह रहे थे?

शकुनि—(आश्चर्यसे) मैं!—वह—मैं पूछ रहा था कि ऐसी घटा उठी है, इस समय—ऍं—ऍं—ऍं—आज ऍं—खिचड़ी पकाई जाय तो कैसा!

कृष्ण—खिचड़ी जो पकानी थी सो तो पका चुके—खूब खिचड़ी पकाई है!

शकुनि—और जरा—

कृष्ण—देखता हूँ, तुम सब समझते हो। तुम बड़े कूटनिपुण हो, बड़े बुद्धिमान् हो। मैं नहीं विश्वास करता कि तुम खुद यह नहीं समझते कि तुम अपनी करतूतसे राज्यमें अनर्थ और सर्वनाशको बुला रहे हो।

शकुनि—श्रीकृष्ण ! मैं कुछ नहीं करता ! जो कुछ करता है सो भाग्य कर रहा है ! नहीं तो धर्मराज युधिष्ठिर बनको जायँ, और उनकी जगह पर महाराज दुर्योधन—

दुर्योधन—क्या कहते हो मामा ?

शकुनि—और दुर्योधन—भीष्म, विदुर, द्रोण, कृप आदि अच्छे अच्छे आदमियोंके रहते शकुनिको अपने राज्यका मन्त्री बनावें ?

दुर्योधन—यह क्या कह रहे हो मामा ?

शकुनि—भाग्यके लिखेको कोई नहीं मेट सकता । भाग्यमें अगर लिखा है कि भीम दु:शासनका खून पियेगा तो वह अवश्य पियेगा—

दु:शासन—सो कैसे पियेगा ?

शकुनि—और अगर भाग्यमें लिखा है तो भीमसेन अपनी गदासे दुर्योधनकी जाँघ भी अवश्य तोड़ेगा ।

दुर्योधन—यह क्या कह रहे हो मामा ?

शकुनि—अरे भैया, मामा मामा क्यों कर रहे हो ? तुम्हारा मामा तुम्हारा ही है । कोई छीने नहीं लेता । तकदीरके लिखेको कोई मेट नहीं सकता । तुम्हारा मामा तो मामा ही है, तुम्हारा—

कृष्ण—तो पाण्डवोंके पास यही खबर ले जानी होगी ?

दुर्यो०—हाँ । उनसे कहिएगा कि दुर्योधन पाण्डवोंको बिना युद्ध किये सुईकी नोक भर भी पृथ्वी नहीं देगा ।

कृष्ण—अच्छी बात है ! तो फिर मै जाता हूँ ।

शकुनि—यह क्यों ! हम लोग आपको बुलाकर लाये हैं—यह जो उत्सवकी तैयारी आप देख रहे हैं सो सब आपहीके लिए है । आप देख रहे हैं न ?

कृष्ण—हाँ देख तो रहा हूँ । बड़ी भारी तैयारी है । लेकिन इसमें भक्तिकी अपेक्षा कीर्तन बहुत है ।

दुर्यो०—सो कैसे ?

कृष्ण—(शकुनिसे) मामा, ये लोग कुछ नहीं समझ सके । समझे तुम और मैं ।—अच्छा जाता हूँ महाराज ।

शकुनि—जानेसे पहले कुछ जलपान कर लीजिए—सत्कार ग्रहण कर लीजिए ।

कृष्ण—जरूरत क्या है ? बातचीतहीसे खूब तृप्त हो गया हूँ । अब और जरूरत नहीं है ।　　　　(जाना चाहते हैं ।)

दुर्यो०—(दुःशासनसे) पकड़ लो ।

कृष्ण—मुझे पकड़ेगा ? हायरे मूर्ख ! मैं खुद पकड़ाई न दूँ तो मुझे क्या कोई पकड़ सकता है ?—मामा ! अबकी सयाने सयानेका सामना है ।

दुर्यो०—जाओ, पकड़ो । आगे बढ़ो ।

(दुःशासन, कर्ण आदि वीर कृष्णको पकड़नेके लिए आगे बढ़ते हैं । विश्वंभरमूर्ति धारण करके कृष्ण जोरसे हँसते हैं और उन लोगों पर स्थिर दृष्टि करके व्यंगपूर्ण विनयसे सिर झुका लेते हैं ।)

कृष्ण—तो फिर जाता हूँ महाराज ! (अन्तर्धान हो जाते हैं ।)

दुर्यो०—कोई नहीं पकड़ सका ?

दुःशा०—नहीं । उनके नेत्रोंमें न जाने कैसा अद्भुत दृश्य मैंने देखा । जान पड़ा, जैसे उसमें एक साथ सृष्टि-स्थिति-प्रलय सब कुछ है । मैं स्तंभित सा हो गया ।

दुर्यो०—और तुम लोग ?

कर्ण—मुझे भी ऐसा ही जान पड़ा ।

दुर्यो०—कैसा ?

कर्ण—उसका वर्णन मैं नहीं कर सकता। एक साथ ही भय, उल्लास, दु:ख, करुणा, स्नेह—सब उस दृष्टिमें था। उस समय कैसा जान पड़ा, सो ठीक ठीक कहकर नहीं समझा सकता।

दुर्यो०—तुम सब कुछ नहीं हो। इन्हीं लोगोंको लेकर मैं पाण्डवोंसे लड़ना चाहता हूँ ?

शकुनि—भाग्य !

दुर्यो०—कृष्ण कहाँ गये ?

कृपा०—पाण्डवोंके डेरेमें।

दुर्यो०—तो वे पाण्डवोंके पक्षमें हैं ?

कृपा०—हाँ महाराज।

दुर्यो०—लेकिन आपने तो कहा था मामा कि इस युद्धमें कृष्ण हमारी ही तरफ होंगे !

शकुनि—भैयाहो ! इसमें जरा भी भूल नहीं हो सकती। मैंने हिसाब लगाकर देखा है।

दु:शासन—क्या हिसाब लगाकर देखा है ?

शकुनि—यही कि इस युद्धमें तुम लोगोंको कृष्णप्राप्ति होगी। मेरे हिसाबमें कहीं भूल हो सकती है ? जबतक तुम लोगोंको कृष्णप्राप्ति नहीं होती तबतक मैं तुम लोगोंका साथ नहीं छोड़ता। जाऊँ, जाकर उसकी तैयारी करूँ।—हिसाबमें फर्क नहीं पड़ सकता। (प्रस्थान।)

दु:शा०—कुछ डर नहीं है दादा। कृष्णने अपनी दस करोड़ नारायणी सेना हम लोगोंको दी है। और उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि मैं खुद इस युद्धमें शस्त्र ग्रहण नहीं करूँगा। अकेले निरस्त्र वे पाण्डवोंके पक्षमें रहकर क्या कर लेंगे ?

[गान्धारीका प्रवेश ।]

गान्धारी—दुर्योधन !

(दुर्योधन सिंहासनसे उतर पड़ता है । और सब भी अपने अपने आसनसे उठ खड़े होते हैं ।)

दुर्यो०—कौरव-जननी राजसभामें क्यों आई हैं ?

गान्धारी—तो मेल असंभव है ?

दुर्यो०—मेल असंभव है ।

गान्धारी—बेटा ! राज्य युधिष्ठिरको लौटा दो ।

दुर्यो०—सो कैसे हो सकता है ?

गान्धारी—यह राज्य युधिष्ठिरहीका है ।

दुर्यो०—सो कैसे माता !

गान्धारी—दुर्योधन ! मैं तेरी मा हूँ । मैं आज्ञा देती हूँ—राज्य फेर दे । लौटा दे ।

दुर्यो०—मगर पिता—

गान्धारी—तुम्हारे पिता वृद्ध और अन्धे हैं । एक तो दोनों आँखोंसे अन्धे हैं—और फिर पुत्रस्नेहसे और भी अंधे हो रहे हैं !—उनकी सम्मति ?—मैं आज्ञा देती हूँ । मैं माता हूँ। मैं आज्ञा देती हूँ—युधिष्ठिरको राज्य फेर दे ।

दुर्यो०—लेकिन पिता—सदा पिता हैं ।

गान्धारी—और माता शायद सदा माता नहीं है ? लड़के, तुझे किसने नौ महीने पेटमें रक्खा है ? किसने दूध पिलाकर पाला है ? किसने दासीकी तरह नित्य तेरी सेवा की है ?—पिताने या माताने ?—हाय विधाता !—यह पुत्र !—गर्भकी यन्त्रणासे मूर्च्छित माता उस मूर्च्छाके दूर होने पर, अन्धा फकीर जैसे भीखमें मिले हुए पैसेको हाथ

बढ़ाकर खोजता है, केवल सन्तानको ही हाथ फैलाकर खोजती है। पुत्रका मुख देखकर प्रसूतिकी प्रसववेदना तीव्र सुखका रूप धारण कर लेती है। वह पुत्र उसके बाद भी केवल माताके स्नेहसे पलता और बड़ा होता है। मगर बड़े होने पर वह समझता है कि माता जैसे उसकी कोई नहीं है! जननीका अनुरोध जैसे कोई चीज ही नहीं है—मानों घुटने टेके आँखोंमें आँसू भरे, हाथ जोड़े भिक्षुककी दुर्बल प्रार्थना मात्र है। ओरे! ओरे मूढ! रे अबोध! माता यह जो तुझसे भिक्षा माँग रही है सो भी तेरे ही भलेके लिए—अपने लिए नहीं—पुत्र! युधिष्ठिरको राज्य फेर दे!

दुर्यो०—कभी नहीं माता! यह कभी न होगा।

गान्धारी—उद्धत लड़के, आज मदान्ध होकर माताकी आज्ञाका अनादर मत कर। तेरे सिरपर सर्वनाश उपस्थित है!

शकुनि—पाण्डवोंके दूत कृष्ण अन्तिम उत्तर लेकर चले गये हैं! बहन! अब मेलकी तरफ जानेका उपाय नहीं है!

गान्धारी—उपाय है मूढ़! धर्मकी राह सदा खुली रहती है।—राज्य फेर दे बेटा।

दुर्यो०—यह मुझसे नहीं हो सकेगा माता!

गान्धारी—तो पुत्र रहे या न रहे—धर्मकी जय हो! (प्रस्थान।)

दुर्यो०—वह क्या है!

दुःशा०—बिजली कड़क रही है!

दुर्यो०—महलके ऊपर!

(दुर्योधन, भीष्म और द्रोणके सिवा सबका घबराये हुए भावसे प्रस्थान।)

भीष्म—दुर्योधन! तुम्हारा चेहरा पीला क्यों पड़ गया? क्यों! काँप क्यों रहे हो? इस घटनाके होनेवाले परिणाममें क्या अब भी सन्देह है?

दुर्यो०—क्या कहते हो पितामह ! मैं युद्धमें जय अवश्य पाऊँगा। जिसकी ओर भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अंगराज कर्ण आदि हैं—

भीष्म—पाण्डवोंके पक्षमें स्वयं जनार्दन हैं।

दुर्यो०—कौरवोंके पक्षमें दस करोड़ नारायणी सेना है।

भीष्म—मगर पाण्डवोंके पक्षमें श्रीकृष्ण हैं।

दुर्यो०—यह कई अक्षौहिणी सेना—

भीष्म—एक ओर अनेक अक्षौहिणी सेना है, दूसरी ओर धर्म है। और सब धर्मोंके मूल जनार्दन हरि हैं।—

यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः ।

[जिधर धर्म है उधर कृष्ण हैं, जिधर कृष्ण हैं उधर विजय है ।]

(प्रस्थान ।)

दुर्यो०—यह कैसा घोर अन्धकार है ! घनी काली घटा असीम आकाशमें चारों ओर छा रही है। वह मूसलधार पानी बरसता चला आ रहा है !—जय ! पराजय !—यह भी वीरोंका खेल है—इसमें जीवनकी बाजी लगी है।—ना ना, प्राण दूँगा, लेकिन तो भी मान नहीं दूँगा।—कौन ? ओ ! गुरु द्रोणाचार्य हैं !—एकटक आप क्या निहार रहे हैं ?

द्रोण—देखता हूँ, मेरे सामने स्नानके लिए एक बड़ी भारी रक्त-की गंगा बह रही है। और, उसमें स्नान करके वे पाण्डव बाहर निकल रहे हैं !

दुर्यो०—क्यों गुरुदेव ?

द्रोण—महात्मा भीष्मके वचन तुमने सुने कौरव !—" जिधर धर्म है उधर कृष्ण हैं, जिधर कृष्ण हैं उधर विजय है । "—भीष्मका कहा कभी मिथ्या नहीं हो सकता।

दुर्यो०—तो फिर पितामह कौरवोंके पक्षमें क्यों हैं ?

द्रोण—भीष्मको मैं नहीं जान सकता ! लेकिन यह निश्चय है कि भीष्मका कहा कभी मिथ्या नहीं होता ।

(दुर्योधनके सिवा सबका प्रस्थान ।)

दुर्यो०—जितना ही आगे बढ़ता हूँ, अन्धकार उतना ही और घना होता चला आता है ।—कौन—मामा !

[शकुनिका प्रवेश ।]

शकुनि—हाँ मैं हूँ ।

दुर्यो०—सभामें फिरसे क्यों आये हो मामा ?

शकुनि—महाराज ! मैंने भविष्य देखा है—

दुर्यो०—किसका ?

शकुनि—इस युद्धका । इस समरमें जय अच्छीतरह निश्चित है—वह हो चाहे जिस पक्षकी । लेकिन तुम्हारी यह प्रतिज्ञा अटल रहेगी कि " प्राण दूँगा, पर राज्यका थोड़ासा हिस्सा भी नहीं दूँगा । " यह मैंने निश्चय जान लिया ।

दुर्यो०—किसने कहा !

शकुनि—मैंने यह बिजलीके अक्षरोंमें मेघोंकी काली चादर पर लिखा देखा है ।

दुर्यो०—देखा है ?

शकुनि—देखा है ! कुछ डर नहीं है ।

दुर्यो०—अकस्मात् यह उलटी हवा चलने लगी । (प्रस्थान ।)

शकुनि—मूर्ख ! तुम कुछ नहीं समझते ? तुम ऐसे अंधे हो ! इस युद्धमें कौरवकुल निर्मूल हो जायगा ।—इसमें मेरा क्या लाभ है ? और कुछ नहीं—केवल वह साधारण—अत्यन्त साधारण सन्तोषमात्र

है ।—मेरा स्वभाव ही यह है—जिसके घरमें रहता हूँ, जिसका खाता-पीता हूँ, उसीका सर्वनाश करता हूँ ।　　　　(प्रस्थान ।)

दूसरा दृश्य ।

स्थान—हस्तिनापुरका राजमहल । अन्तःपुर ।

समय—सन्ध्याकाल ।

[अंबिका और अंबालिका गाती हैं ।]

गजल ।

ईश्वर हमारे जीमें यही इतना सा बल दें ।
हम हँसते हुए ऐसे ही इस लोकसे चल दें ॥
जीवनकी त्रुटि और बुढ़ापेकी भी भ्रुकुटी ।
पर्वा न हो इनकी, इन्हें चुटकीहीसे मल दें ॥
फिर कर भी नहीं देखेंगे हम अपनी तरफको ।
दुःखको न मँझाएँ, उसे पैरोंसे कुचल दें ॥
हम पाएँ न पाएँ, न हो चिन्ता कुछ इसकी ।
दुखियों पै दया करके उन्हें चैन दें, कल दें ॥

अंबि०—अच्छा गाना है ।

अंबालि०—बहुत अच्छा है !

अंबि०—अच्छा, अब हम गाती किस हिसाबसे हैं ?

अंबालि०—क्यों ! विधवा होनेसे क्या गाना भी न गाना चाहिए ?

अंबि०—लेकिन अब तो तू बूढ़ी हो गई है !

अंबालि०—कबसे !

अंबि०—सो तो नहीं जानती । मगर बूढ़ी हो गई है !

अंबालि०—यह कैसे !—बूढ़ी हो गई, और मालूम न पड़ा ! यह तो बड़ी ही भयानक अवस्था है ।

अंबि०—तेरे सब बाल पक गये हैं !

अंबालि०—पक जाने दो। मन तो नहीं पका—वैसा ही बना है।

अंबि०—सो तो सच है बहन। हमारी दृष्टिमें पृथ्वी वैसी ही नई है—जीवन अभीतक एक मधुमय मधुर स्वप्न है।

अंबालि०—वह इतना मधुर है कि वैधव्य भी उस स्वप्नको उचटा नहीं सका—मृत्युने भी प्राणभयसे उस स्वप्नको उचटाना नहीं चाहा !

अंबि०—और सासजी—यद्यपि बाहर वही चौदह बरसकी बालिका बनी हैं—मगर भीतरसे बुढ़ा गई हैं।

अंबालि०—मन ही मन न जाने क्या सोचा करती हैं और आप ही आप न जाने क्या बड़-बड़ किया करती हैं।

अंबि०—वे—वे और कुछ नहीं, भीष्म-तर्पण करती हैं।

[सत्यवतीका प्रवेश।]

सत्य०—अंबिका !

अंबि०—(आगे बढ़कर) क्या है मा !

सत्य०—तुम दोनों जनी यहाँ हो ?

अंबालि०—(आगे बढ़कर) ठीक अनुमान किया तुमने मा। हम यहाँ हैं।

सत्य०—यहाँ दोनों जनी क्या करती हो ?

अंबि०—लड़कपन कर रही हैं।

अंबालि०—और तुम दिनरात मुँह लटकाये सोचा क्यों करती हो मा ?

सत्य०—मैं सोचती क्यों हूँ ?—तुम नहीं सोचतीं ?

अंबालि०—कहाँ ! कुछ तो नहीं जान पड़ता।—तुझे दीदी, जान पड़ता है ?

अंबि०—कुछ नहीं।—अच्छा, हम सोचें क्यों मा?

सत्य०—सोचोगी क्यों!—कौरव और पाण्डवोंमें महायुद्ध ठन गया है। तुममेंसे एकके पोते दूसरीके पोतोंसे जान-बाजी लगाकर लड़ रहे हैं।—और तुम इसमें सोचनेकी कुछ बात ही नहीं पातीं?

अंबि०—कहाँ? नहीं तो! अंबालिका, तूने इसमें कुछ सोचनेकी बात पाई?

अंबालि०—कहाँ! कुछ समझमें तो नहीं आता।

सत्य०—तुम लोग अपने मनमें अपने अपने पोतोंके जीतनेकी कामना नहीं करतीं?

अंबिका और अंबालिका—कहाँ! याद तो नहीं आता।

सत्य०—अच्छा। अब तो तुम्हारी समझमें आया कि तुम्हारे पोतोंमें भयानक युद्ध हो रहा है।

दोनों—हाँ समझमें आया।

सत्य०—इस युद्धमें तुम किस पक्षकी जीत चाहती हो?

दोनों—दोनों पक्षकी।

सत्य०—दुर! दोनों पक्षकी कहीं जीत हो सकती है?

अंबि०—क्यों नहीं होगी?

अंबालि०—बताओ?

सत्य०—इस युद्धमें या तो पाण्डव निर्मूल हो जायँगे या कौरव। तुमको इसके लिए कुछ चिन्ता नहीं होती?

अंबि०—कहाँ! तुझे होती है बहन?

अंबालि०—बिल्कुल नहीं।

अंबि०—जो होना है वह होगा।—क्यों बहन?

अंबालि०—सोच करके, चिन्ता करके, क्या होगा ।—क्यों बहन !

सत्य०—शायद दोनों कुल निर्मूल हो जायँगे ।

अंबि०—यह भी हो सकता है ।—क्यों बहन ?

अंबालि०—क्यों नहीं ।

सत्य०—और मृत्युके सहचर कृष्णवर्ण प्रेत अपने लंबे पैरोंसे इस रणभूमिकी दुर्गन्ध-दूषित वायुमें विचरण करेंगे ।

अंबि०—समझमें नहीं आया ।—बहन, तूने कुछ समझा ?

अंबालि०—कुछ नहीं ! बहुत अधिक कठिन संस्कृतमें कहा है ।

सत्य०—मगर तुम दोनों अपने मनमें किस पक्षकी जय चाहती हो ?

अंबि०—दोनों पक्षोंकी जीत नहीं होती ?

सत्य०—ना । एक ही पक्षकी जीत होती है ।

अंबालि०—बाजी बराबर नहीं रहती ?

सत्य०—ना ।

अंबि०—तो अंबालिकाके पोतोंकी जय हो ।

सत्य०—यह क्या ! अगर पाण्डवकुलका विनाश हुआ—

अम्बि०—तो अम्बालिका रोवेगी ।

अम्बालि०—हिश् !

सत्य०—और अगर इस युद्धमें कौरव-कुलका विनाश हुआ—

अम्बालि०—तो अंबिका रोवेगी ।

अम्बि०—जाने दो, इससे क्या आता जाता है ।

सत्य०—और—और अगर दोनों कुलोंका विनाश हुआ—

अम्बि०—मा, जीवनके बुरे पहलू पर ही विचार करके क्यों वृथा कष्ट पा रही हो ?

अम्बालि०—जब रोना होगा, रोया जायगा । इसके लिए अभी-से चिन्ता क्यों करती हो ?

अम्बि०—संसारमें दुःख तुम्हें पकड़नेके लिए घूम रहा है । उसे धोखा दो—उससे बचो ।

अम्बालि०—बस, धोखा दो ।

अम्बि०—और अगर दुःख तुम्हारे ऊपर आकर गिर पड़े—

अम्बालि०—तो उसे हँसकर उड़ा दो ।

अंबि०—जहाँ तक होसके—

अंबालि०—बस ।

अंबि०—वह देख बहन, कबूतरोंका एक झुंड उड़ा जा रहा है —देख–देख–देख !

अंबालि०—वाह वाह ! (दोनोंका प्रस्थान ।)

सत्य०—यह हृदयका सुन्दर अनन्त यौवन व्याधिकी टेढ़ी भौंहोंको नहीं डरता—उसे बन्दी बना लेता है, बुढ़ापेकी लूटसे सुलह कर लेता है, भयको सुला देता है, विश्वमें एक आनन्दमय संगीत व्याप्त कर देता है ।—इसके आगे यह अनन्त यौवन क्या चीज है !—न झुकी हुई पीठ, अशिथिल शरीर, सुदृढ दाँत, न पके हुए बाल—क्या करेंगे, जब यह हृदय ही मसानकी तरह निरानन्द हो रहा है !—बड़ा अच्छा वर दिया था ऋषिवर ! जो विषधर सर्पकी तरह मुझे घेरे हुए है । अपना वर फेर लो ऋषिवर ! मुझे इस अनन्त यौवनके कारागारसे छुटकारा दे दो । यह अन्तःसाररहित जीर्ण रम्य महल—टूट कर गिर जाय, चूरचूर हो जाय । रूपका यह व्यंग्य अभिनय समाप्त कर दो ! (प्रस्थान ।)

तीसरा दृश्य ।

[कृष्ण अकेले खड़े गा रहे हैं ।]

गजल ।

क्यों आज आती याद वृन्दावन-निकुंज-बहारकी ।
निर्जन किनारे फिर वही बातें हैं क्यों सुख-प्यारकी ॥
यमुना किनारे वह हवा खाना टहलना हर घड़ी ।
होना मगन वह फूलगंधोंमें गुँधावट हारकी ॥
शुभ शरदकी शुचि चाँदनीमें चुपके तकना राह वह ।
रक्खी अधर पर बाँसुरी, भीतर हँसी वह प्यारकी ॥
वह नील चल जलराशिका कलरव कालिंदी कूलमें ।
वह ग्वालबालों संग लीला ललित बालविहारकी ॥
वह सब करूँ मैं आज अनुभव—दूर पर ज्यों सुन पड़े ।
वह किसीके नूपुरोंकी धुनि और वाणी प्यारकी ॥

[युधिष्ठिर आदि पाण्डवोंका प्रवेश ।]

कृष्ण—क्यों धर्मराज ! रातको दलबलसहित मेरे पास आकर क्यों उपस्थित हुए हो ? आप भी नहीं सोओगे—और, और किसीको न सोने दोगे ।

युधि०—तुम सो रहे थे क्या वासुदेव ?

कृष्ण—मालूम नहीं, सो रहा था या नहीं !—लेकिन स्वप्न देख रहा था । कैसा मधुर स्वप्न था !—उचट गया ।—खैर जाने दो । मालूम पड़ता है, कोई नई खबर जरूर है ।

युधि०—खबर कोई नहीं है ।

कृष्ण—तो फिर ?

युधि०—एक सलाह करने आया हूँ ।

कृष्ण—रातको ?

युधि०—आपका उपदेश चाहता हूँ।

कृष्ण—उपदेश चाहते हो!—किस बारेमें? उपदेश मैं खूब दे सकता हूँ।

युधि०—अकेले पितामह भीष्मके हाथसे सारी पाण्डवपक्षकी सेना नष्ट हुई जा रही है वासुदेव!

कृष्ण—यह तुम्हारा कहना तो सच है कि पाण्डवपक्षकी सेना नित्य कम होती चली जा रही है।

युधि०—इस युद्धमें हम लोगोंके जीतनेकी आशा नहीं है।

कृष्ण—इस समयकी दशा देखकर तो ऐसा ही जान पड़ता है।

भीम—अन्तको तुम भी यह बात कहते हो वासुदेव!

कृष्ण—कहूँ न तो क्या करूँ। तुम तो बड़े भारी वीर हो न? तुम्हारी गदा कहाँ है? क्यों, चुप क्यों हो! गदाधर! दुःशासनका रक्त नहीं पियोगे? पियो।—और अर्जुन! तुम तो खाण्डव-दाह करा चुके हो! विराटके यहाँ युद्धमें सबको हरा चुके हो! और भी न जाने क्या क्या कर चुके हो। तुम्हारा गाण्डीव धनुष क्या सो रहा है?

भीम—इस समय इस तरहकी हँसी अच्छी नहीं लगती वासुदेव।

कृष्ण—कामकी दिल्लगी हर समय नहीं सूझती भैया।—क्यों भाई नकुल और सहदेव, एक कोनेमें बैठे आँखें फाड़फाड़कर मेरी ओर क्या ताक रहे हो!

युधि०—अब इसका उपाय क्या है? मित्र बताओ! क्या करना चाहिए—उपदेश दो!

कृष्ण—वही तो सोच रहा हूँ।—सहदेव मेरी बाँसरी तो दो।

युधि०—बाँसरीका क्या करोगे?

कृष्ण—बहुत दिनोंसे बजाई नहीं। जरा ले आओ।

युधि०—सो इस समय—

कृष्ण—जरा मनको स्थिर करने दो।

(कृष्ण वंशी लेकर जरा बजाते हैं।)

नकुल—आपने तो बाँसरी बजाना शुरू कर दिया।

सहदेव—इस मामलेके साथ बाँसरी बजानेका तो कोई सम्बन्ध नहीं देख पड़ता।

कृष्ण—(वंशी रखकर गंभीर भावसे।) युधिष्ठिर! भीष्मके जीते रहते तो इस पक्षके जीतनेकी आशा नहीं की जा सकती। तो मैं द्वारकापुरीको लौट जाऊँ।

सहदेव—वाह भैया और क्या! लड़ाई ठनवाकर फिर खिसक जानेकी तैयारी!

नकुल—इसीको कहते हैं—पेड़ पर चढ़ा कर सीढ़ी हटा लेना।

युधि०—कृष्ण! इस घोर विपत्तिमें हमें एक तुम्हारा ही भरोसा है।

कृष्ण—मैं क्या करूँ? मैं तो प्रतिज्ञा कर आया हूँ कि इस युद्धमें शस्त्र-ग्रहण नहीं करूँगा। मेरी सब नारायणी सेना शत्रुओंके पक्षमें है। और अर्जुन मन लगाकर युद्ध नहीं करते। मैं क्या करूँ?

युधि०—अर्जुन मन लगाकर युद्ध नहीं करते?

कृष्ण—नहीं। युद्धभूमिमें मैंने केवल सारथिका काम करनेका वादा किया है। लेकिन मैं उससे बहुत अधिक काम करता हूँ।

भीम—क्या करते हो? खाक करते हो।

कृष्ण—नहीं करता! युद्धके प्रारंभमें युद्धभूमिमें मैंने तीन घंटे तक अर्जुनको कर्त्तव्यका उपदेश किया है,—यद्यपि उपदेश देनेका कोई ठहराव नहीं था। लेकिन उतना सब उपदेश बेकार ही गया। अर्जुनमें जैसे जान ही नहीं है—जैसे हाथ-पैर ठंडे हो रहे हैं। बाण मारते हैं—और

साथ ही साथ अफीमचीके ऐसी जँभाइयाँ लेते हैं। नहीं तो अगर अर्जुन जी लगाकर युद्ध करें—देवराजसे अस्त्रशिक्षा और शंकरसे पाशुपत अस्त्र पानेवाले, शस्त्रशिक्षाके ब्रह्मचारी अर्जुन अगर ध्यान दें—तो जय हाथमें है।—लेकिन वे अगर युद्धक्षेत्रमें बाहुयुद्ध छोड़कर वाग्युद्ध करें, तो भाई मुझे बिदा कर दो।

युधि०—अर्जुन! भाई! तुम जी लगाकर युद्ध नहीं करते?

अर्जुन—मैं क्या करूँ दादा? भाई-बन्धु-गुरुजनोंके मारनेको मेरा हाथ ही नहीं उठता, हृदय विषादसे शिथिल हो जाता है। मैं क्या करूँ दादा!

कृष्ण—हाथ चलाओ। हृदयको दृढ़ करो।

युधि०—(कातर भावसे) अर्जुन!—

कृष्ण—और अर्जुन ही क्या करें! युद्धके प्रारंभमें तुमने ही तर्क करके इनके उत्साहको ठंडा कर दिया! जातिवध—जातिवध चिल्लाकर नाकमें दम कर दिया! जिसे जो मिलना चाहिए, जिसके प्रति जिसका जो कर्त्तव्य है, मैं बता दूँगा। विचार करनेवाले तुम लोग कौन हो? अर्जुन अगर मन पर धरें तो भीष्म-वध तो बहुत ही सहज साधारण बात है।

अर्जुन—भीष्म पितामह तो इच्छा-मृत्यु हैं। बिना उनकी इच्छाके उनकी मृत्यु ही नहीं हो सकती।

कृष्ण—तो फिर बस! मजेमें नींदके खर्राटे लो।—बहस मत करो अर्जुन। अपना कर्त्तव्य करो—क्षत्रियके धर्मका पालन करो। और सब भार मैं अपने ऊपर लेता हूँ।

युधि०—(अनुनयके स्वरमें) अर्जुन!—

अर्जुन—अच्छा दादा! वही करूँगा।

कृष्ण—भीष्मकी इच्छा-मृत्युका बंदोबस्त मैं करता हूँ। आओ युधिष्ठिर! तुम्हें एक काम करना होगा—अच्छा क्या करना होगा, सो फिर मैं तुमको बताऊँगा। इस समय तुम सब लोग जाओ।

(कृष्णके सिवा सबका प्रस्थान।)

(कृष्ण फिर वंशी बजाने लगते हैं।)

[व्यासका प्रवेश।]

कृष्ण—कौन? ऋषिवर व्यास है?—चरणोंमें प्रणाम करता हूँ।

व्यास—तुम धन्य हो! परमेश्वर! कौन किसके चरणोंमें प्रणाम करता है? प्रभो! तुम्हारी लीलाको समझना कठिन है।

कृष्ण—(प्रणाम करते हैं।)

व्यास—प्रतारणा! प्रतारणा! नित्य प्रतारणा! देव नारायण! यह तुम क्या करते हो! दूर भविष्यकालमें अगर अबोध मानव तुम्हारे पदांकका अनुसरण करेंगे तो यह पृथ्वी प्रतारणा-जालसे ढक जायगी।

कृष्ण—सावधान मनुष्य! तुम ससीम मनुष्य हो, और ईश्वर असीम है। दोनोंका धर्म भिन्न भिन्न है। मनुष्य, तुम क्या जानते हो कि मैं विश्वमें मनुष्य-पतंग-कीट आदिकी कितनी हत्याएँ करता हूँ? बकरी मनुष्योंका आहार है, मेंढ़क सर्पका भोजन है, कीड़े-पतंगे छिपकली आदिके भक्ष्य हैं। जीव ही जीवका जीवन है। इस ब्रह्माण्डमें आत्मरक्षाके लिए नित्य घोर संग्राम चल रहा है।—यही ईश्वरका कार्य है।

व्यास—क्यों?

कृष्ण—सावधान! वह महान् उद्देश्य मनुष्यके लिए दुर्बोध्य है—मनुष्य उसे नहीं समझ सकता।

व्यास—मनुष्य क्या उससे बाहर है?

कृष्ण—कभी नहीं । व्यास, इस महासंग्राममें अकेला मनुष्य ही स्वार्थत्याग करनेमें समर्थ है । उसके बाहर स्वार्थका पसार है—बाहरके साथ बाहर युद्ध चला करता है । किन्तु भीतर और एक युद्ध मैंने चला रक्खा है—वह अपनी प्रवृत्तिके साथ अपनी ही प्रवृत्तिका युद्ध है । ब्रह्माण्डमें सब कुछ मैं ही हूँ; उसका सारांश मनुष्य है । इस दूधका घी मनुष्य है; इस पेड़का सुकुमार फूल मनुष्य है । व्यास ! यह सृष्टि मेरी है । मनुष्य अगर यथार्थ मनुष्य हो, तो वह ईश्वरसे भी बड़ा हो सकता है ।

व्यास—यह कैसे नारायण ! ईश्वरसे बड़ा मनुष्य होसकता है !!!

कृष्ण—निश्चय हो सकता है; वह मनुष्य अगर यथार्थ मनुष्य हो ।

व्यास—यह क्या कृष्णचन्द्र ! तुम्हारी आँखोंमें आँसू और होठोंपर हँसी है ।

कृष्ण—सुनोगे महर्षि व्यास, बाँसरी बजाऊँ ? (वंशी बजाते हैं ।)

चौथा दृश्य ।

स्थान—कुरुक्षेत्र ।

समय—रात ।

[अकेले भीष्म खड़े हैं ।]

भीष्म—यह शून्य जीवन अब अच्छा नहीं लगता । दिनों दिन आयु क्षीण होती चली आरही है । सहचर, बन्धु, अनुचर आदिको एक एक करके समयसमुद्रके जलमें डूबते देखा है । और मैं समयके प्रवाहमें शिथिलताके बोझसे दबे हुए, विगतवैभव, शीर्ण 'अन्त' को लिये बह रहा हूँ !—जीवनके कामोंकी रंगभूमि पर धीरे धीरे अन्धकार फैलता चला आ रहा है । बर्फसे ढके हुए हिमाचलके समान जीवनके

शिखर पर खड़े होकर अतीतकालके शिखरकी उपत्यका-भूमिको देख रहा हूँ।—यह रूखा शून्य जीवन अब अच्छा नहीं लगता।

[गान्धारी और कुन्तीका प्रवेश।]

भीष्म—कौन? कुन्ती!

(दोनों प्रणाम करती हैं।)

भीष्म—क्या खबर है कुन्ती! पाण्डवोंकी कुशल तो है?

कुन्ती—यथासंभव कुशल है। किन्तु आज मेरे पुत्र उत्साह-हीन, भयसे व्याकुल, म्रियमाण, निर्जीव हो रहे हैं।

भीष्म—क्यों बेटी?

कुन्ती—युधिष्ठिरने जयकी आशा छोड़ दी है। वह फिर वनको जानेके लिए तैयार है।

भीष्म—क्यों? स्वयं श्रीकृष्ण जिसके पक्षमें हैं, उसे काहेका भय है कुन्ती? कितने ही ऋषि-मुनि जिनके चरणकमलोंका ध्यान करके भी जिन्हें नहीं पाते, वे श्रीकृष्ण जिसके स्नेहके बन्धनमें बँधेहुए हैं, उसको जयकी आशा नहीं है?

कुन्ती—कैसे जय होगी देव? इस नव दिनके युद्धमें ही पाण्डव-पक्षकी सेना आधी रह गई है; जो बची है वह भी कातर जर्जर हो रही है। यह सेना आपके तीक्ष्ण बाणोंकी चोटके आगे और कितने दिन टिक सकेगी? हम लोग युद्धमें जय नहीं चाहते, फिर वनको जाते हैं। इसीसे मैं बहन गाँधारीसे भेंट करने आई थी।

भीष्म—किन्तु तुम्हारा पुत्र अर्जुन महावीर है।

कुन्ती—अर्जुनके ऐसे संसारके सैकड़ों वीर भी अकेले भीष्मके बराबर नहीं हो सकते। अकेला अर्जुन क्या कर सकता है?

गान्धारी—देव, आप बड़े बुद्धिमान् हैं । आप दुर्योधनका पक्ष छोड़ दीजिए ।

भीष्म—सो कैसे गान्धारी !

गान्धारी—मैं जानती हूँ, आप कौरवोंके पितामह हैं । लेकिन आप पाण्डवोंके भी पितामह हैं । संग्राममें एक पोतेका पक्ष लेकर दूसरे पोतेसे शस्त्र युद्ध करना भीष्मको नहीं सोहता। आप दुर्योधनका पक्ष छोड़ दीजिए ।

भीष्म—यह मुझसे नहीं हो सकता गान्धारी । दुर्योधन राजा है, मैं प्रजा हूँ ! राजाकी विपत्तिके समय रक्षा करना प्रत्येक प्रजाका कर्तव्य है ।

गान्धारी—दुर्योधन राजा नहीं है । दुर्योधन दूसरेका हक छीननेवाला डाकू है । दूसरोंकी सम्पत्ति छीनकर राजा-उपाधि लेकर सिंहासन पर बैठ जानेसे ही कोई राजा नहीं हो सकता देव !

भीष्म—यह क्या कह रही हो गान्धारी । दुर्योधन तुम्हारा बेटा है।

गान्धारी—हाँ दुर्योधन मेरा बेटा है ।—पिता ! आप जानते हैं। माताके लिए पुत्र कैसी चीज है ? वह उसके शरीरको शक्ति, आँखोंकी ज्योति, अन्धेकी लकड़ी, रोगीकी दवा, मरते हुएका रामनाम है । वह उसकी जीवन-मरुभूमिका झरना है, संसार-सागर तरनेकी नाव है, इस जन्मका सर्वस्व है, दूसरे लोककी आशा है, जन्म-जन्मान्तरकी पुण्य-राशि है । वह उसके लिए यन्त्रणाके समय सुखकी नींद है, शोकके समय सान्त्वना है, दीनावस्थामें भिक्षा है, निराशाके समय धैर्य है।—दुर्योधन मेरा वही बेटा है । किन्तु जब वही बेटा न्याय, सत्य, विवेक और धर्मके विरुद्ध है, तब वह मेरा कोई नहीं है । जब वह बेटा पापके सिंहासनपर बैठकर—अन्यायका राजदण्ड हाथमें लेकर, जगत्में दुर्नीतिके शासनको दृढ़ करता है—तब वह मेरा कोई नहीं है । जब

वह पुत्र राज्यमें अशान्ति, अराजकता, उच्छृंखल अत्याचार बढ़ाता है तब जी चाहता है—क्या कहूँ पिता—तब जी चाहता है कि मैं आत्महत्या कर लूँ; तब पछतावा आता है कि बचपनमें उसे विष देकर मार क्यों नहीं डाला।—पिता! मैं दुर्योधनकी जननी हूँ, मैं कहती हूँ आप दुर्योधनका साथ छोड़ दीजिए।

भीष्म—लेकिन गान्धारी! मैंने उसका अन्न खाया है।

गान्धारी—इतनी नम्रता! यह साम्राज्य दुर्योधनका नहीं है, दुर्योधनके पिताका नहीं है, यह साम्राज्य भीष्मका है—दुर्योधनका अन्न आपने खाया है? ना, दुर्योधन ही आजतक आपकी कृपासे प्राप्त अन्न खाता आ रहा है।—और अगर आपहीका कहना ठीक हो, तो अगर अन्नदाता हत्या करनेके लिए कहे तो क्या आप वही करेंगे?

भीष्म—यह हत्या है?

गान्धारी—हाँ यह हत्या है। और यह एक हत्या नहीं है, यह हजारों हत्याओंका ढेर है। युद्ध नाम देदेनेहीसे क्या हत्या हत्या नहीं रहेगी महाराज? पाण्डुके पुत्रोंने गुजारेके लिए सिर्फ पाँच गाँव माँगे थे! मदान्ध दुर्योधनने उत्तर दिया कि "बिना युद्धके सुईकी नोक भर भूमि भी नहीं दूँगा।" और उसी दर्पपूर्ण स्वेच्छाचारको धर्मवीर भीष्म अपने बाहुबलसे प्रचार कर रहे हैं!

भीष्म—गान्धारी! समझता हूँ कि यह अन्याय है। लेकिन विपत्तिके समय मैं राजाका साथ न छोड़ सकूँगा। भीष्म अपनी जिन्दगीमें कृतघ्न नहीं बन सकता।

गान्धारी—कुन्ती! बहन!—यह जंगलका रोना है। भीष्मदेव बड़े ही राजभक्त हैं! कर्त्तव्यके लिए माता पुत्रको छोड़ सकती है, मगर भीष्मदेव राजाको नहीं छोड़ सकते। चलो बहन। (जाना चाहती हैं।)

भीष्म—ठहरो ।

(दोनों ठहर जाती हैं।)

भीष्म—ना, जाओ ।

(गान्धारी और कुन्ती चली जाती हैं। भीष्म पितामह वहीं टहलते हैं।)

भीष्म—तो फिर वही हो।—आत्महत्या करना पाप है। किन्तु मैं उस पापको करूँगा—इस धरातल पर धर्म-राज्य स्थापित करनेके लिए नरक जाऊँगा। सच बात है!—मैं अधर्मके पक्षमें हूँ।—तथापि—तथापि—राजभक्ति, कृतज्ञता,—दोनोंका पितामह हूँ—बड़ी मुश्किल है!—और यह महा अन्याय है कि मैं इच्छा-मृत्यु हूँ—किन्तु इस तरह अपनी मौत बुलाना क्या आत्महत्या नहीं है? वही हो।—वह कौन! वह छायारूपी कौन है?

छाया-मूर्ति—प्रतिहिंसा—

भीष्म—प्रतिहिंसा!

छा० मू०—भीष्म! कल तुम्हारे रुधिरसे मेरी प्रतिहिंसा पूरी होगी।

भीष्म—कैसे?—कहाँ जाती हो? मेरी मौतका हाल कहो। कहो।

छा० मू०—कल फिर कुरुक्षेत्रकी समरभूमिमें मुझे देखोगे।

(गायब हो जाती है।)

भीष्म—मूर्ति जाकर अन्धकारमें लीन हो गई। आश्चर्य है! अच्छी बात है। अब कुछ दुबधा नहीं है।

[कौरवोंका प्रवेश।]

दुर्यो०—पितामह!

भीष्म—(चौंककर) कौन?—कौरव? क्या खबर है?

दुर्यो०—पितामह! तुम्हारा पराक्रम धन्य है। पाण्डव रणभूमि छोड़कर भागे जाते हैं। वह उनके भागनेका शोर-गुल सुन पड़ रहा है।

भीष्म—बेटा ! यह भागनेका शोर-गुल नहीं है। यह पाण्डवोंका उल्लासपूर्ण उत्सव-कोलाहल है।

दु:शासन—उत्सव-कोलाहल है !

भीष्म—वह दसवें दिन रणमें भीष्मके गिरनेकी सूचना दे रहा है !

दुर्यो०—रणमें भीष्मका गिरना ?

भीष्म—दुर्योधन ! बेटा ! आज आखरी दफा कहता हूँ—रण बंद कर दो। अब भी समय है। नहीं तो निश्चय इस युद्धमें कौरव-कुल निर्मूल हो जायगा।

शकुनि—भीष्मका कहना कभी झूठ नहीं होता।

दु:शा०—मामा !

शकुनि—विजय-लक्ष्मी बड़ी ही चंचल है।

भीष्म—बेटा ! अन्तिम बार कहता हूँ—लड़ाई बंद कर दो।

दुर्यो०—कभी नहीं। पितामह ! ये प्राण दे दूँगा; मगर कौरवोंकी मर्यादा नहीं मिटने दूँगा।

भीष्म—यह होनी है ! दैवकी इच्छा है !—मैं साधारण मनुष्य क्या कर सकता हूँ ! मैं दूर भविष्यमें देख रहा हूँ कि जो भ्रातृ-द्रोहकी आग आज कुरुक्षेत्रकी रणभूमिमें जली है वह किसी समय सारे भारतको छा लेगी और रावणकी चिताके समान युग-युग तक, अनन्त समय तक, जलती रहेगी। यह निश्चय जानो।

शकुनि—भीष्मका कहा कभी झूठा नहीं होता।

भीष्म—अपने घर लौट जाओ। सुखसे जाकर सोओ।

(कौरवोंका सिर झुकाये हुए उदासभावसे प्रस्थान।)

भीष्म—मैं कुछ दिनसे अपने आसपास मौतकी छाया देखता हूँ। आज वह द्वारपर आकर उपस्थित हुई थी। उसकी गंभीर आह्वान-वाणी मैंने सुनी है।

(व्यासके साथ श्रीकृष्णका प्रवेश ।)

कृष्ण——भीष्म !

भीष्म——यह क्या ! वासुदेव ! चरणोंमें प्रणाम करता हूँ ।—ऋषिवर ! चरणोंमें प्रणाम करता हूँ ।

व्यास——स्वस्ति ।

कृष्ण——समझे, मैं तुम्हारे पड़ावमें क्यों इतनी रातको आया हूँ भीष्म !

भीष्म——समझ गया देव ! तुम लीलामय अन्तर्यामी भगवान् हो। आशीर्वाद दो कि यह आत्महत्याका पाप तुम्हारी इच्छासे धो जाय ।

कृष्ण——आँख उठाकर देखो व्यास ! क्या कभी और देखा है?—इतना बड़ा त्याग ! ऐसा निःस्वार्थ जीवन !

व्यास——देवव्रत ! देवव्रत ! यह भी क्या संभव है ! धन्य भाई, तुम धन्य हो ! मैं व्यास भी धन्य हूँ——जो तुम्हारा गुरु हूँ। देवव्रत, आज शिष्यके आगे गुरुको हार माननी पड़ी ।

कृष्ण——मैंने कहा था व्यास——मनुष्य ईश्वरसे भी बड़ा है——अगर वह मनुष्य हो।——भीष्म ! मैं निर्विकार हूँ ! मगर इधर देखो, तो भी मेरी आँखोंमें आँसू भर आये हैं ।——भक्त ! पुरुषोत्तम ! पुण्यश्लोक ! महाभाग ! योगी ! वीरवर ! त्यागके आदर्श ! तुम्हें पाप स्पर्श करेगा? उसकी मजाल है?——देखो, वह पाप तुम्हारी महिमासे तुम्हारे पैरोंके तले पड़ा हुआ गला जा रहा है ।

पाँचवाँ दृश्य ।

स्थान—रणभूमिका मैदान ।

समय—प्रदोषकाल।

[कृष्ण, अर्जुन, और शिखण्डी ।]

कृष्ण—क्या देखते हो अर्जुन ! समरभूमिमें विस्मयसे अवाक् होकर क्यों खड़े हुए हो ! रथ पर चढ़ो वीर । युद्ध करो ।

अर्जुन—कैसा आश्चर्य है कृष्ण ! यह देखते हो वासुदेव—

कृष्ण—क्या अर्जुन ?

अर्जुन—ऐसा युद्ध तुमने क्या कभी देखा है वासुदेव ? वह देखो भीष्मके धनुषसे छूटे हुए बाणोंने प्रलयके बादलोंके समान आकर सूर्यके किरणजालको ढक लिया है । वह देखो, बिजलीके समान तरवारकी चमक देख पड़ती है । अकेले भीष्म सौ भीष्मके समान युद्ध कर रहे हैं—शत्रुओंके हृदयमें वज्रसदृश बाण मार रहे हैं । चारों ओरसे हजारों योद्धा आकर उनको घेरते हैं—लेकिन पल भरमें भीष्मके बाणोंसे छिन्न भिन्न होकर सब पृथ्वीतल पर गिर पड़ते हैं । वे अनेक जुझाऊ बाजे बज रहे हैं, रणका कोलाहल छा रहा है, मृत्युका आर्त्तनाद उठ रहा है—साथ ही घोड़ोंका हिनहिनाना और हाथियोंकी चिंघार सुन पड़ रही है लेकिन भीष्मके धनुषकी टंकार सब शब्दोंके ऊपर गूँज रही है । भीष्मको भी मैंने कभी ऐसा युद्ध करते नहीं देखा ।

कृष्ण—सचमुच यह बड़ा आश्चर्य देख पड़ रहा है अर्जुन !

अर्जुन—वह देखो, पाण्डवोंकी सेना भाग रही है । उसके पीछे अकेले भीष्म, मेघके पीछे उन्मत्त वायुके समान, अपना रथ दौड़ाते जा रहे हैं । उत्साहसे उनकी छाती फूलकर दूनी हो रही है, दृढ मुट्ठीसे धनुष

पकड़े हुए हैं, पैर जमाये हुए हैं, वृद्ध शरीरमें तेजीके साथ पसीना बह रहा है, होठसे होठ चबा रहे हैं—उनमें मृत्युका प्रत्यक्ष रूप दिखाई पड़ रहा है, आँखोंमें प्रलयकी ज्वाला झलक रही है !—ये वृद्ध भीष्म हैं—या साक्षात् वज्रपाणि इन्द्र हैं ! धन्य पितामह ! धन्य भीष्म ! धन्य वीर ! ऐसा युद्ध—कैसा उल्लास है ! जान पड़ता है, आजके भीष्म पहलेके भीष्मसे भी विक्रममें बढ़ गये हैं ।

नेपथ्यमें—भागो ! भागो !

[धनुष्य-बाण हाथमें लिये युधिष्ठिरका प्रवेश ।]

युधि०—अर्जुन ! तुम यहाँ खड़े हो !

कृष्ण—कुछ कहो मत—अर्जुन समरके दृश्यको बहुत अच्छी तरह देख रहे हैं !

युधि०—अर्जुन ! अर्जुन !

अर्जुन—(चौंककर) दादा !

युधि०—यहाँ किस लिए खड़े हो ?

अर्जुन—दमभर विश्राम करनेके लिए ।

युधि०—इधर पाण्डवोंकी सेनाका संहार हुआ जा रहा है !

नेपथ्यमें—भागो भागो !

युधि०—वह आर्त्तनाद सुनो !—उधर देखो, वीर भीष्म पितामह रथके पहियोंकी घरघराहटसे शत्रुओंके हृदय कँपाते हुए विजयके उल्लाससे बिजलीकी तरह इधर ही आरहे हैं । अर्जुन ! युद्धके लिए आगे बढ़ो।

अर्जुन—अभी युद्ध करने जाता हूँ । कोई डर नहीं है ।

कृष्ण—आँखें खुलीं अर्जुन ?

अर्जुन—तो फिर आज भीष्म और अर्जुनके महासमरसे प्रलय होगा । सारथि, रथ, चलाओ ।

कृष्ण—शिखण्डी ! तुम अर्जुनके आगे रहना !

दृश्य परिवर्तन।

स्थान—युद्ध भूमिका एक हिस्सा।

[युद्धके वेषमें भीष्म उपस्थित हैं।]

भीष्म—ये तो शिखण्डीके बाण नहीं हैं !—ये तो अर्जुनके बाण हैं जो मेरे हृदयमें वज्रके समान लगते हैं।—अर्जुन, जितने बाण मारे जा सकें, मारो। मैं अपनी छाती खोले खड़ा हूँ। बस आज सब समाप्त है।—सारथि, रथ चलाकर समरभूमिके बीचमें ले चलो। भीष्म सबके सामने ही युद्धभूमिमें गिरेगा। सब जगत् देखे।

छठा दृश्य।

स्थान—कौरवोंका अन्तःपुर।

समय—सन्ध्याकाल।

[अंबिका और अंबालिका टहल टहल कर बातें कर रही हैं।]

अंबि०—यह दस दिनसे बराबर लगातार युद्ध हो रहा है—तो भी विजय-लक्ष्मी चुप-चाप अलग बैठी है !

अंबालि०—जान पड़ता है, सो रही है।

अंबि०—सपना देख रही है।

अंबालि०—खर्राटे ले रही है।

अंबि०—भीष्म युद्ध कर रहे हैं ?

अंबालि०—और नहीं तो क्या कर रहे हैं !

अंबि०—दस दिनसे लगातार युद्ध कर रहे हैं ?

अंबालि०—लगातार युद्ध कर रहे हैं।

अंबि०—इन बूढ़े बाबाको अमर पाकर ये लोग उनसे बहुत ही अधिक काम करा रहे हैं।

अंबालि०—'अमर पाकर' कैसे! भीष्म क्या अमर हैं?

अंबि०—अमर तो हैं ही!

अंबालि०—या इच्छा-मृत्यु हैं?

अंबि०—एक ही बात है। इच्छा करके कौन मरना चाहता है?

अंबालि०—सच दीदी, इच्छा करके कौन इस दुनियाको छोड़ना चाहता है?—यह दुनिया ऐसी ही मनोहर है!

[विह्वल भावसे गान्धारीका प्रवेश। उनके बाल और वस्त्र अस्तव्यस्त हो रहे हैं।]

गान्धारी—सुना मा?

अंबिका और अंबालिका—क्या बहू!

गान्धारी—इस दारुण समरमें आज भीष्मका पतन हो गया!

(अंबा और अंबालिका पत्थरकी मूर्तिकी तरह खड़ी रहती हैं।)

गान्धारी—क्यों मा! चुप क्यों रह गईं! एकटक मेरी ओर ताक रही हो!—जैसे दो पत्थरकी मूर्त्तियाँ हों!—रोती नहीं हो मा? अरे तुम चिल्लाकर रोओ—तुम्हारे साथ मैं भी रोऊँ। मुझे रुआई नहीं आती! जैसे कोई गला दबाये हुए है! रोओ मा!

अंबिका—गान्धारी—

गान्धारी—क्या!—रुक क्यों गईं! कहो! रोओ! क्या हो गया—समझती हो!—फिर भी नहीं रोतीं मा! (अंबालिकासे) क्या! केवल होठ हिला रही हो! क्या कहती हो? और भी चिल्लाकर और भी चिल्लाकर! इस प्रलयकी आँधीमें मैं कुछ नहीं सुन पाती। और भी चिल्लाकर—और भी चिल्लाकर!

अंबालि०—भीष्मका पतन होगया ? पृथ्वी पर भीष्म नहीं हैं ?

गान्धारी—हैं—युद्धमें शरशय्या पर पड़े हुए भीष्म उत्तरायण सूर्य-की अपेक्षा कर रहे हैं। अभी तक मृत्यु उन्हें स्पर्श करनेका साहस नहीं कर सकी है! दूर खड़ी हुई है। लेकिन उसके बाद क्या होगा ?

अंबालि०—उसके बाद क्या होगा ?

गान्धारी—नहीं जानती। भीष्मकी मृत्युके बाद क्या होगा सो नहीं जानती। यह आकाश क्या इसी तरह नीला बना रहेगा ? हवा क्या इसी तरह चलेगी ? मनुष्य चलते-फिरते रहेंगे, बातचीत करेंगे ? और हम !—हम जीती रहेंगी ?

अंबि०—क्या हुआ बहन !

अंबालि०—क्या हुआ दीदी !

गान्धारी—देव, तुमने यह सुदीर्घ शुष्क शून्य जीवन औरोंहीके लिए धारण किया—और आज मरे भी तो औरोंके लिए! इतना महान् जीवन, इतनी ममता, इतनी शक्ति—सब औरोंहीके लिए! और अपने लिए केवल अक्षय कीर्ति !

अंबि०—यह क्या ! इस दुःखके बोझसे जैसे झुकी जारही हूँ, जैसे मिट्टीमें मिली जारही हूँ ! कहाँ गया राजर्षिश्रेष्ठ—वह मेरा हर्ष, वह दीप्ति, वह अन्तःकरणका अनन्त यौवन, जिसके बलसे मैंने पति-वियोगके दुःखको हँसते हँसते अपने सिर पर ले लिया था, बुढ़ापे पर अबतक अपना दबाव रक्खे हुए थी—सो सब कहाँ गया !—बहन !

अंबालि०—कभी मैं रोई नहीं ! इसीसे वह दुःखकी रुकी हुई बहिया आज राह पाकर उमड़ पड़ी है और जैसे हृदयको चूरचूर करके बहाये लिये जा रही है दीदी !—

अंबि०—रो, चिल्ला चिल्लाकर रो ! दुःख आँसू बनकर बह जाय—हमारा चिल्लाकर रोना सर्वत्र व्याप्त हो पड़े ।

गान्धारी—वह कौन है ?

[वृद्धावस्थाके रूपमें सत्यवतीका प्रवेश ।]

सत्य०—अरे ! तुम लोग अभी जीती हो ?

गान्धारी—ये लो, देवी सत्यवती भी आगईं !—यह क्या ! घड़ी भरमें ही बुढ़ापेने घेर लिया !—वह अनन्त यौवना—

सत्य०—कहाँ ! कोई नहीं है !

अंबि०—हम हैं यहाँ मा !

सत्य०—अंबालिका !

अंबालि०—हाँ मा, मैं भी हूँ ।

सत्य०—कहाँ, मैं तो नहीं देख पाती ।

गान्धारी—यह क्या ! अन्धी भी हो गईं !

सत्य०—अंबिका ! अंबालिका ! कहाँ हैं दोनों !

दोनों—हम यहीं हैं मा !

सत्य०—हाँ, मा कहकर पुकारो । मा कहकर पुकारो । (अपनी छाती पर हाथ रखकर) इसी जगह ।—इसी जगह—पुकारो !—मा कहकर पुकारो ! जैसे उसने पुकारा था । उसने मुझे एक दिन मा कहकर पुकारा था । उसके बाद—

अंबि०—(गान्धारीसे) बहू, माको समझाकर धीरज दो ।

गान्धारी—आज सभीकी एक दशा है । कौन किसे समझावे—कौन किसे धीरज दे !

सत्य०—आओ बेटियो, मेरी गोदमें आओ ! छातीसे लग जाओ ! —तुम कहाँ हो ? देख नहीं पाती !—छातीसे लग जाओ ! (रोकर)

छातीसे लग जाओ बेटियो ! तुम्हें छातीसे लगाकर सो रहूँ। (दोनोंको छातीसे लगाकर) कहाँ ! ठंडक तो नहीं पड़ती। जली जाती हूँ ! जली जाती हूँ !--ओः !

गान्धारी--मा !

सत्य०—कौन गान्धारी ! तू अभी है ? जीती है ? अच्छा हुआ ! आ, हम सब एक साथ चिल्ला चिल्ला कर रोवें। एक साथ—एक स्वरसे रोवें। (स्वरसे)

तर्ज थियेटर।

मेरा तो था वो सब जगत, मेरा तो था हृदय वही।
आँसू था आँखका वही, मुँहकी भी था वही हँसी॥
जीकी जलन भी था वही, वह था गलेका हार भी।
वह मेरा अंधकार था, वह था विचित्र चाँदनी॥
वह मेरा दुखका था मरण, वह मेरा सुखका गान था।
वह मेरी रातकी सुवह, था मेरा अन्त भी वही॥
इस लोककी था जिन्दगी, उस पारका सहारा भी।
वह मेरा हाहाकार था, वह था विजयकी दुंदुभी॥

—बेटा ! मेरे प्राणाधिक पुत्र !

(गान्धारीको लिपटाकर मूर्च्छित हो जाती है।)

अंबिका और अंबालिका—मा ! मा !

गान्धारी—सितारका तार टूट गया—मृत्यु हो गई।

अंबिका और अंबालिका—मृत्यु हो गई।

गान्धारी—हाँ, मृत्यु हो गई।

(अंबालिका और अंबिका परस्पर एक दूसरेकी ओर ताकने लगती हैं।)

साँतवाँ दृश्य ।

स्थान—युद्धभूमिका एक हिस्सा ।

समय—प्रातःकाल।

(अर्जुन और शिखण्डी जारहे हैं।)

शिखंडी—युद्धमें भीष्मका पतन हो गया । फिर तुम अर्जुन, इतने विकल क्यों हो रहे हो ? जैसे कोई मोहको प्राप्त हो उस तरह तुम चल रहे हो—पैर रखते कहीं हो, पड़ते कहीं हैं !

अर्जुन—शिखंडी ! मेरा हृदय बहुत ही दुर्बल हो रहा है। कानोंमें वे ही टूटे-फूटे शब्द अबतक गूँज रहे हैं कि "क्या किया अर्जुन ! जिस छाती पर लेट कर तू सोता था, उसी पर तूने वज्र-सदृश बाण कैसे मारे ?" पितामहने–जब वृद्ध पितामहने—अपने हृदयमें पोतेको तीक्ष्ण बाण मारते देखा तब उन्होंने बड़े ही खेद और क्षोभसे धनुष-बाण हाथसे रख दिये; अपनी छाती खोलकर आगे कर दी । उस समय मैं युद्ध करनेमें उन्मत्त सा हो रहा था, इसीसे इस पर ध्यान नहीं दे सका ।—अर्जुनके बाणोंसे निरस्त्र भीष्मकी हत्या हुई !

शिखण्डी—कौन कहता है वीर ? भीष्मका पतन तो मेरे बाणोंसे हुआ है ।

अर्जुन—शिखण्डी ! जब पहाड़ नीचेसे खोद दिया जाता है, तब उँगली लगानेसे भी वह नीचे गिर पड़ता है ।

शिखण्डी—तुम्हारा यह क्षोभ वृथा है । जो होना था वह हुआ ।

अर्जुन—तुमने देखा नहीं वीर ! आज युद्धमें किस तरह भीष्म गिरे ? जैसे ज्योतिकी राशि प्रदीप्त मध्याह्न-सूर्य आकाशसे गिर पड़े । सारा विश्व काँप उठा, सहसा आकाशमें प्रलयकालके ऐसा अन्धकार

छा गया । स्वर्गमें देवोंका हाहाकार मुझे स्पष्ट सुन पड़ा । और—(रुँधे हुए कंठसे) चलो पितामहके पास चलें ।

शिखंडी—(जाते जाते) अर्जुन, भीष्मके पतनसे आज मेरे हृदयमें ऐसा उल्लास क्यों है ? कोई जैसे मेरे कानमें कह रहा है—" आज तुम्हारी प्रतिहिंसा पूर्ण हुई "—यह क्या बात है अर्जुन !

अर्जुन—यह क्या वीर ?

शिखण्डी—मैं नहीं जाऊँगा । तुम जाओ अर्जुन !

अर्जुन—क्यों वीरवार ?

शिखण्डी—मैं नहीं जा सकूँगा ।—ना, नहीं जा सकूँगा । तुम जाओ अर्जुन !

(दोनों अलग अलग दो ओरसे जाते हैं ।)

आँठवाँ दृश्य ।

स्थान—कुरुक्षेत्र ।

समय—सन्ध्याकाल ।

[शरशय्यापर भीष्म पड़े हैं । सामने विदुर, द्रोण, कृपाचार्य, कौरव और पाण्डव खड़े हैं ।]

द्रोण—पाण्डवो और कौरवो ! पुत्रो ! आज प्रकाण्ड हत्याकाण्डकी लीला शुरू हो गई । समरमें भीष्मका पतन हो गया ! कालके कराल कृष्ण-पटल पर रुधिरके अक्षरोंसे पहले भीष्मका नाम लिखो । यह कृष्णकराल सूची शीघ्र ही पूर्ण होगी ।

विदुर—कोई चिन्ता नहीं है । इस काल-संग्राममें कौरवपक्षका कोई भी मनुष्य जीता नहीं रहेगा ।

कृष्ण०—भीष्मके पतनने आज इस युद्धके भावी परिणामकी सूचना दे दी ।

युधि०—पितामह ! बहुत अधिक पीड़ा हो रही है ?

भीष्म—कुछ भी नहीं ।—दुर्योधन !

दुर्यो०—पितामह !

भीष्म—सिर नीचे लटका जा रहा है; तकियेका सहारा दो ।

(दुर्योधन बहुत अच्छी कोमल तकिया लेकर भीष्मके सिरके नीचे रखता है।)

भीष्म—(उसे हटाकर हँसते हुए) भीष्मके लिए यह तकिया !—अर्जुन ! अर्जुन !

(अर्जुन अपना तर्कस भीष्मके सिरके नीचे रखते हैं ।)

भीष्म—अर्जुन, भीष्मको पहचानता है !—क्यों अर्जुन !

अर्जुन—(आँखोंमें आँसू भरकर) पितामह क्षमा करो ! मेरा सिर घूम रहा है; आँखोंके आगे अँधेरा छा रहा है ।

भीष्म—ना ना बेटा, तुम धनंजय हो ! जो मै नहीं कर सका, वही तुमने किया—तुमने अपने कर्त्तव्यको पूरा किया है ।—दुर्योधन ! जल—

दुर्यो०—(सोनेके पात्रमें जल लाकर) जल पियो पितामह !

भीष्म—यह जल !—अर्जुन ! तुम जल दो ।

(अर्जुन गाण्डीव धनुष्य पर बाण चढ़ाकर पृथ्वीमें मारते हैं । पाताल-गंगाका जल बाहर निकल कर फुहारेके आकारसे भीष्मके मुखमें गिरता है ।)

भीष्म—तृप्त हो गया बेटा !

[उद्भ्रान्त भावसे गान्धारीका प्रवेश । साथमें कुन्ती भी है ।]

गान्धारी—पिता ! पिता ! (पैरोंमें लिपट जाती है) कहाँ जाते हो भीष्मदेव ?—इस संसारको कंगाल करके कहाँ जाते हो ? इस दीन मनुष्यलोकमें अन्धकार फैलाकर कहाँ जाते हो ? पिता—जाओ मत । मनुष्य-गौरवके सूर्य ! कौरवोंके कल्याण ! मेरे पुत्रोंने तुम्हारा आश्रय लिया है । देव ! वे इस विपत्तिके सागरके बीच संकटके

तूफानमें तुम्हारा ही मुँह ताक रहे हैं ! उन्हें अकेला छोड़ कर कहाँ जा रहे हो देव !

भीष्म—धीरज धरो बेटी गान्धारी ! तुम्हें क्या यों अधीर होना सोहता है ?—तुम्हारे सौ पुत्र हैं ।

गान्धारी—लेकिन ये सौ पुत्र शोक बढ़ानेवाले ही हैं । पिता, तुम सदासे कौरवोंके सहायक हो ।—ना ना, जाना नहीं । उठो ! धनुष-बाण हाथमें लो ।—कौरवोंके शत्रुओंको भस्म कर दो ।

भीष्म—शोक मत करो ! धर्मकी जय हुई है ! गान्धारी ! खुशी मनाओ ।

गान्धारी—सच कहते हो पिता ! धर्मकी जय हुई है—कोई दुःख नहीं है ! विजयके बाजे बजाओ । द्रोणकी बलि दे दो, कर्णकी बलि दे दो, दुर्योधनकी बलि दे दो,—पर धर्मकी जय हो ! पिता कोई दुःख नहीं है ।

[गंगाका प्रवेश ।]

गंगा—कहाँ हो बेटा देवव्रत !—वत्स ! देवव्रत !

भीष्म—उसी प्रिय परिचित स्वरमें वही बचपनका नाम लेकर—जिस नामसे मेरी माता पुकारती थीं—कौन पुकार रहा है ?

गंगा—मैं वही तेरी माता हूँ बेटा ।

भीष्म—चरणोंमें प्रणाम करता हूँ । (प्रणाम करना ।)

भीष्म—पाण्डवो ! कौरवो ! प्रणाम करो । (सब प्रणाम करते हैं ।)

गंगा—इस अन्याययुद्धमें किसने मेरे पुत्रकी छातीमें बाण मारे हैं !

कुन्ती—अन्याययुद्धमें नहीं; न्याययुद्धमें पितामहका पतन हुआ है ।

गंगा—ऐसा वीर आजतक तीनों लोकमें नहीं पैदा हुआ, जो न्याययुद्धसे मेरे पुत्रका वध कर सके । मैंने ऐसे पुत्रको गर्भमें नहीं

धारण किया, जिसे कोई न्याययुद्धमें मार सके !—मेरे पुत्रका वध करनेवाला कौन है ! बताओ ।

अर्जुन—(आगे बढ़कर) वह नराधम मैं हूँ माता !

गंगा—तुम? तुम क्षुद्र वीर? न्याययुद्धमें तुमने भीष्मको मारा है? यह संभव नहीं है ।—मैं यह शाप देती हूँ कि जिसने अन्याययुद्धमें मेरे पुत्रके हृदयमें मृत्युबाण मारा है वह भी अपने पुत्रके शोकसे जले !

भीष्म—यह क्या किया ! यह क्या किया !—जननी जाह्नवी ! अपना शाप फेर लो ।

अर्जुन—ना ना, पितामह ।—देवि जननी जाह्नवी, शाप दो । जितना चाहो, जितना हो सके, शाप दो । पुत्रशोक तो अत्यन्त तुच्छ है । जननी, यह दुःख सौ पुत्रशोकके समान हृदयको व्यथा पहुँचा रहा है कि मैं भीष्मकी हत्या करनेवाला हूँ ! शाप दो, जितना हो सके—दुःख दो । इस महान् दुःखके विराट् अग्निकुण्डमें मैं भस्म हो जाऊँ—पितामह—　　　　(कण्ठावरोध हो जाता है ।)

भीष्म—धैर्य धारण करो बेटा अर्जुन ! किसीने मुझे नहीं मारा । मृत्यु मेरी इच्छाके अधीन है ।—जननी ! जानेकी आज्ञा दो ।

गंगा—जाओ पुरुषसिंह ! अपने लोकको जाओ । वत्स देवव्रत, प्राणाधिक, तुम देवता थे; तुमने पृथ्वी पर देवोंके समान ही अनासक्त, निष्कलंक, दुर्जय, उज्ज्वल जीवन व्यतीत किया है । जाओ पुत्र ! मेरे चरणोंकी रज मस्तकमें लगाकर यह शुभ यात्रा करो ।

(गंगाका प्रस्थान ।)

भीष्म—कौरवो और पाण्डवो ! रात आगई है । अन्धकार होता चला आ रहा है ।—अपने डेरों पर जाओ । खुले हुए युद्धके मैदानमें शरशय्या पर पड़ा हुआ अकेला मै जागूँगा । डेरोंको जाओ ।—बेटी गान्धारी !—कौरवों पाण्डवोंसे जानेके लिए कहो ।

गान्धारी—कौरवो और पाण्डवो, चलो।

(भीष्मके पाससे सब चले जाते हैं। अन्धकार घना हो आता है।)

भीष्म—हे करुणामय! आज अब तुम दर्शन दो! जगत्के गुरु कृष्णचन्द्र! तुम ही पापियोंके लिए अन्त समयके आश्रय हो। मैं पापी हूँ! मैं नराधम हूँ! दर्शन दो! इस जीवन-मरणके सन्धि-स्थलमें, इस भयानक गम्भीर मुहूर्त्तमें, इस संकटमें आकर दर्शन दो नाथ! मैं सामने दिगन्तपर्यंत विस्तृत असीम समुद्र देख रहा हूँ—और, उसका गम्भीर गर्जन-शब्द सुन रहा हूँ। दयामय हरि! दर्शन दो—दर्शन दो।

[श्रीकृष्णका प्रकट होना।]

कृष्ण—मैं यहीं हूँ देवव्रत। कुछ डर नहीं है।

भीष्म—मेरे प्यारे! दयामय हरि! अन्तको राह दिखाओ—अपने चरणोंकी नावका सहारा दो।

कृष्ण—हे त्यागी संन्यासी भीष्म! योगी! धर्मवीर! वह देखो, कालके आकाशभेदी शिखर पर धर्मका प्रकाशपूर्ण मन्दिर विराजमान है। वह धूपकी सुगन्ध आ रही है। वह सुनो, शंख बज रहा है। त्यागी, वीर! जाओ—कोई चिन्ता नहीं है; किनारे पर नाव तयार है, उसपर चढ़कर अपने पुण्यकी ध्रुव ज्योतिसे प्रकाशमान मार्गमें चले जाओ। तुम धन्य हो!—तुम्हारी अक्षय कीर्ति संसारमें सदा भक्तिके साथ गाई जायगी!

(पर्दा गिरता है।)